चन्दामामा
माँ–बच्चों का मासिक पत्र
6

Photo by N. Ramakrishna

पुरस्कृत
परिचयोक्ति

बाल - सलोने

प्रेषिका :
माधुरी श्रीवास्तव, जौनपुर

सौन्दर्य साधनार्थ...
हमारे
मधुर मनोहर सुगन्ध
द्वारा सुख देने वाले
और सुरूपता को
बढ़ाने वाले श्रेष्ठ
प्रसाधन
मलय चन्दन का साबुन
कैस्टोरल केश तैल
सिलड्रेस शैम्पो
रेणुका फेस पाउडर
लेवेण्डर वाटर
यूडीकोलन
दि कैलकटा
केमिकेल
कं० लि०
कलकत्ता - २९

बच्चों की
पार्टियों में...
सर्व प्रिय
MORTON's

Aruna
DRESSES

RAJA

विश्वास ! ....

अत्युत्तम टाइलेट साबुन में आप
जो कुछ चाहते हैं वह सब

मैसूर सांडल सोप में

है, यह हम विश्वास के साथ कह सकते हैं।
हर जगह मिलता है।

गवर्नमेंट सोप फ्याक्टरी, बैंगलोर।

डोंगरे का बालामृत

चन्दामामा

संचालक :: चक्रपाणी

वर्ष 4 :: अंक 5

जनवरी 1953

नव वर्ष के साथ इस अङ्क में हमारा नया धारावाही 'रत्न-मुकुट' शुरू होता है। पाठकों के सुझावों के अनुसार, जैसा कि हमने पिछली बार वादा किया था, हम कुछ नए स्तम्भ और शीर्षक प्रारम्भ कर रहे हैं। आशा है कि ये पाठकों को मनोरंजक प्रतीत होंगे। इस अङ्क में हमने चार पृष्ठ भी बढ़ा दिए हैं। जरूरत पड़ने पर आगे हमने और भी पृष्ठ बढ़ाने का निश्चय किया है। इससे पाठकों की अभिरुचि के अनुकूल, और भी कुछ नए स्तम्भ प्रारम्भ करने में सुविधा होगी। आगे से हम इतिहास, भूगोल और विज्ञान-सम्बन्धी छोटी कहानियाँ, अजीब घटनाओं के वर्णन आदि भी देने की सोच रहे हैं। जो भाई इन विषयों पर कुछ भेजना चाहें, वे इस बात का ख्याल रखें कि इन विषयों की रचनाएं एक या आधे पृष्ठ से ज़्यादा स्थान न लें। इस तरह हम ज़्यादा से ज़्यादा रोचक सामग्री दे सकेंगे। इस बार हम एक पृष्ठ में चुटकुले दे रहे हैं। लेकिन मुश्किल यही है कि नए चुटकुले बहुत कम भेजे जाते हैं। आशा है कि पाठक इन स्तम्भों और शीर्षकों के बारे में अपनी राय जरूर लिखेंगे।

गोल कि चपटी ?

देहाती अध्यापक जी इक
दिन श्रेणी में बोले —
'भेद एक सुन लो लड़को ! हम
तुम से देते खोले ।

इसी महीने इन्सपेक्टर जी
हैं खुद आने वाले ।
पूछ सवाल, परीक्षा तुम सब
की हैं लेने वाले ।

समझो, तुमसे किया सवाल कि
होती धरती कैसी ?
क्या कह दोगे तुम, बोलो तो,
होती किसके जैसी ?'

देखो, सब इस ओर कि मेरी
सुँघनीदानी कैसी ?
गोल-मटोल, सुनो धरती भी
होती इसके जैसी ?'

यह कह कर अध्यापक जी ने
लड़कों को समझाया ।
सूझ-बूझ कर सब कुछ, लड़कों
ने भी शीश हिलाया ।

उदाहरण सुँघनीदानी का
मन में बैठ गया, बस ।
'समझ गए हम बात'—सोचने
लगे सभी होकर खुश ।

एक बात पर, अध्यापक जो
भूल गए थे बिलकुल।
एक गोल, इक चपटी, उनकी
दो सुंघनी की डिबियाँ कुल।

डिबिया गोल स्कूल में लाते,
चपटी रखते बाहर।
लड़कों को यह बात याद थी,
भूल गए थे गुरुवर।

हाँ तो, इन्स्पेक्टर जी साहब
उस स्कूल में पधारे।
उठ प्रणाम कर, बैठ गए फिर
श्रेणी में जन सारे।

वहीं खड़े अध्यापक, पूछा
इन्स्पेक्टर ने मुड़ कर।
'लड़को! धरती कैसी होती,
बोलो कोई सत्वर!'

लड़का एक उठा, झट बोला—
'गोल स्कूल में होती।
पर बाहर जाने पर वह ही
चपटी भी हो जाती।'

भौंचक रहा इन्स्पेक्टर सुन,
अध्यापक शरमाया।
हँसी दबा पाया हर लड़का
मुश्किल से, मुसकाया।

बैरागी
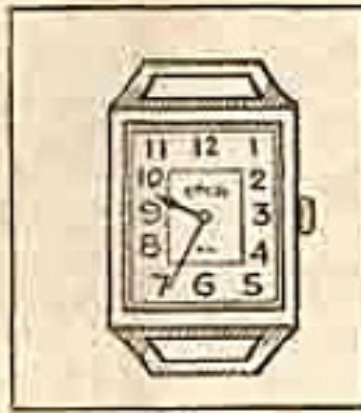
ऊपर नौ चित्र हैं। हरेक चित्र में हमारे चित्रकार ने एक-न-एक गलती कर दी है। क्या तुम बता सकते हो कि वे गलतियाँ कौन-कौन सी हैं? नहीं तो चन्दामामा के अगले अंक में देख कर जान लेना।

हमारे देश पर बहुत दिनों तक मुगल बादशाहों ने राज किया था। उनमें से एक का नाम औरङ्गज़ेब था। कहा जाता है कि औरङ्गज़ेब के शासन में हिन्दुओं को बहुत तकलीफ़ें उठानी पड़ी थीं। औरङ्गज़ेब विधर्मियों से द्वेष करता था। इसलिए उसने हिन्दुओं और खास कर सिखों को बहुत सताया।

औरङ्गज़ेब के अत्याचारों से हिन्दू और सिख लोग पस्त हो गए। उनका आत्म-विश्वास नष्ट होने लगा। दिन-दिन हालत बिगड़ती ही गई।

ऐसे समय वीरवर गुरु गोविन्दसिंह सिखों के गुरु और अगुआ बने। गुरु गोविन्दसिंह की उमर अभी कच्ची थी, मगर बहादुरी और नीति-कुशलता में वे पक्के थे। वे सब तरह से सिखों के मुखिया होने के लायक थे।

गुरु का आसन ग्रहण करते ही उन्होंने देखा कि सारे देश की और खास कर उन के अनुयाइयों की हालत बहुत खराब हो गई है। नौजवान लोग जिनको आगे बढ़ कर जिम्मेदारी लेनी चाहिए थी, कायर और नामर्द बन गए थे। इसलिए गुरु ने सोचा कि 'पहले सिखों को बलिदान की आग में तपा कर शुद्ध कर लेना चाहिए। पीछे देश की हालत अपने आप सुधर जाएगी।'

यह सोच कर उन्होंने एक दिन एक लम्बे-चौड़े बगीचे में मुकाम किया और अपने सभी नौजवान चेलों को वहां जमा किया। सब लोग आकर बगीचे में बैठ गए और उत्सुकता से देखने लगे कि 'देखें, गुरु जी क्या कहने जा रहे हैं?'

लेकिन लोग जो सोच रहे थे, वह सब कुछ नहीं हुआ। गुरु जी ने न उन्हें फटकारा और न लम्बा-चौड़ा व्याख्यान ही

वीरवसिंह

झाड़ा। उलटे वे सबको उपस्थित देख कर एक खीमे के अन्दर चले गए और दूसरे ही क्षण परदा हटा कर हाथ में नङ्गी तलवार लिए बाहर आ गए और गरज कर बोले—'स्वतन्त्रता की वेदी पर कुरबान होने के लिए वीर चाहिए मुझे ! जिसमें हिम्मत हो, आगे आए !' उपस्थित युवक लोग एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। गुरु के हाथ की वह लपलपाती तलवार व्यङ्ग-भाव से विहँस उठी। उसका पानी बहुत तेज़ था। कूद पड़ने का किसी को साहस न हुआ।

आखिर एक नौजवान धीरे से उठा और बोला—'मैं तैयार हूँ !' यह कह कर वह सामने आ खड़ा हुआ। उसका नाम भाई दयासिंह था। गुरु उसे खीमे के अन्दर ले गए। अन्दर से 'खट' की आवाज़ हुई जैसे किसी का सिर उड़ा दिया गया हो। दूसरे ही क्षण खून टपकती तलवार हाथ में लिए गुरु बाहर आए और बोले—'और कोई है माई का लाल !'

इस बार एक स्वर से 'मैं तैयार हूँ !' कह कर चार नौजवान आगे आ गए। उन को भी गुरु अपने साथ अन्दर ले गए। फिर चार बार 'खट-खट' की आवाज़ हुई। खून का नाला खीमे के बाहर बह चला। खून से नहाई तलवार हाथ में लिए गुरु खीमे से बाहर निकले। उन्होंने गम्भीर-स्वर में फिर एक बार बलि-दानी वीरों को पुकारा। इस बार बहुत से नौजवान उठ खड़े हुए और मस्ती से झूमते आकर गुरु के आगे खड़े हो गए। कुरबानी का एक अजब समा बँध गया।

नौजवान ही नहीं; साठ-साठ, सत्तर-सत्तर साल के बूढ़े भी एक दूसरे को ढकेलते हुए आगे बढ़ने लगे। यह देख कर गुरु ने कहा—'ठहरो !' और वे खीमे के अन्दर चले गए। देखते-देखते खीमे का परदा फिर एक बार हटा और गुरु गोविन्दसिंह

बाहर आए। उनके चेहरे पर गर्व-भरी हँसी खेल रही थी। उनके पीछे वे पाँचों बलि-पन्थी वीर युवक खड़े थे। लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

'सत श्री अकाल!' 'गुरु गोविन्दसिंह की जय!' के नारों से आसमान गूँजने लगा। इसके बाद गुरु गोविन्दसिंह ने कहा—'इन नौजवानों ने साबित कर दिया कि यह जाति अभी जिन्दा है। इन पाँचों ने देश, जाति और धर्म का मान रख लिया। ये मेरे प्यारे शिष्य हैं। जाति के रत्न हैं। उचित नेतृत्व के अभाव में दुश्मनों से परेशान हो हमारी जाति की शूरता राख में छिपे अङ्गारों की भाँति मलिन हो रही थी। लेकिन आज मुझे विश्वास हो गया कि ऐसे वीरों के रहते कोई भी जाति ज्यादा दिन सोई नहीं रह सकती। आओ! वीरो! इन दहकते अङ्गारों को फूँक कर अब हम ऐसी भीषण ज्वाला धधका दें कि इस देश का कोना-कोना काँप उठे।' इतना कह कर गुरु गोविन्दसिंह खामोश हो गए। उनकी चेताने वाली वाणी ने उपस्थित वीरों के हृदय की बची-खुची कायरता की कीच को भी धो बहाया। वे जान पर खेलने को तैयार हो गए। तब गुरु ने परदा खींच कर उठा दिया। सबने आश्चर्य के साथ देखा कि वहाँ पाँच बकरे मरे पड़े हैं। तब सबकी समझ में आ गया कि गुरु ने उनकी बहादुरी की परीक्षा लेने के लिए यह सारा स्वाङ्ग रचा था।

उसके बाद गुरु ने उपस्थित वीरों को एक बड़ी भारी दावत दी। तब से वे पाँचों वीर, जो सबसे पहले गुरु का आह्वान सुन कर स्वतन्त्रता की बलि-वेदी पर अपने प्राणों की कुरबानी चढ़ाने आए थे, उनके मुख्य शिष्यों में गिने जाने लगे और उनका नाम ही 'पाँच-प्यारे' पड़ गया।

गुरु गोविन्दसिंह के बाद भी सिखों के अनेक गुरुओं ने बलिदान की इस परंपरा को जारी रखा। सिखों के खून से सिंच कर पंजाब की भूमि उर्वर हो गई। उनके बलिदानों का ही प्रभाव था कि अनेकों संकट झेल कर भी उस जाति का धैर्य विचलित नहीं हुआ और बारंबार मौत से सामना होने पर भी वह जाति जिन्दा रही। इतना ही नहीं, सिख लोग जो पहले लड़ाकू नहीं थे, धीरे धीरे अपनी वीरता और युद्ध-कौशल के लिए भारत के इतिहास में प्रसिद्ध हो गए।

संसार के विभिन्न राष्ट्रों का वृत्तांत पढ़ने से हमें विदित होता है कि जो जाति जितने कष्ट भोगती और बलिदान करती है, वह उतनी ही सजीव और सशक्त बनती है। इसके विपरीत जो जाति भोग-विलास और राग-रंग में डूब जाती है, वह अपनी असलियत गँवा बैठती है और दुर्बल या कायर बन जाती है।

संकट-समय में मनुष्य जो शिक्षा प्राप्त करता है वही उसे जीवन की राह पर संबल देती है। दीपक की बत्ती कटने पर ज्यादा रोशनी देने लगती है, आग में तप कर सोना शुद्ध और अधिक उज्वल बनता है। उसी तरह बल-वेदी पर चढ़ने के बाद ही व्यक्ति और राष्ट्र को मर्यादा और महत्ता प्राप्त होती है।

लेकिन इस का यह मतलब नहीं कि जो छोटी-मोटी हर बात पर लड़ने और जान देने को तैयार हो जाता है वही बहादुर और जवांमर्द है। ऐसे लोगों को सिर्फ हठी और सनकी ही कहा जायगा। बलिदान का लक्ष्य भी पवित्र और महान होना चाहिए। तभी बलिदान की सार्थकता प्रगट होती है। कुरबानी ही वह कसौटी है जिस पर इन्सान का रंग निखरता है।

दो हज़ार साल पहले, ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे 'भल्लाण' नाम का एक बहुत मशहूर राज्य था। उस राज्य का स्वामी था 'हर्षपाल'। हर्षपाल बड़ा ही शूर-वीर और धर्मात्मा था। उसके शासन में प्रजा बहुत सुख से रहती थी।

फिर भी उस राज्य के लोगों को, जिन्हें किसी चीज़ की कमी न थी, एक चिन्ता सता रही थी। बात यह थी कि किसी कारण से हर्षपाल ने ब्याह न करने का निश्चय सा कर लिया था। इसका रहस्य किसी को मालूम न था। लेकिन राज्य का बच्चा-बच्चा जानता था कि ब्याह का नाम लेते ही हर्षपाल बौखला उठता है।

मन्त्री और राज्य के गण्य-मान्य बड़े-बूढ़े बहुत दिन तक इस आशा में थे कि राजा का मन बदलेगा। लेकिन अन्त में निराश होकर वे सब एक जगह जमा हुए और विचार करने लगे कि अब क्या किया जाए। काफी देर तक सोच-विचार करने के बाद वे एक तपस्वी के पास गए। वह तपस्वी दूर की एक पहाड़ी पर गुफा में रहा करता था। लोगों ने उससे अपनी विषम समस्या कह सुनाई। तपस्वियों से संसार की कोई बात छिपी नहीं रहती। सोच-समझ कर उस तपस्वी ने उन लोगों को एक फल दिया और कहा—'यह फल किसी तरह अपने राजा को खिला देना! बस, तुम्हारा काम बन जाएगा।'

वे लोग फल लेकर खुशी-खुशी लौट आए। भोजन के समय दूसरी चीज़ों के साथ वह फल भी राजा को परोस दिया गया। राजा ने वह फल खा लिया। रात हुई और

सङ्कल्प कर लिया कि वह ब्याह करेगा तो इसी सुन्दरी से करेगा; और किसी से नहीं। सबेरा होते ही उसने मन्त्रियों से अपना निश्चय सुना दिया। झट उनको मालूम हो गया कि यह उस तपस्वी के फल का प्रभाव है। उस फल में ऐसा गुण था कि कि उसे खाने वाले की पहली नज़र जिस कुमारी पर पड़ जाती थी, उसी पर वह मुग्ध हो जाता था। उस फल के प्रसाद-स्वरूप हर्षपाल का ब्याह बड़ी धूम-धाम के साथ, गन्धर्व-कुमारी से हो गया। राजा के साथ रानी भी पाकर राज्य की प्रजा फूली न समाई। यथा-समय हर्षपाल के एक पुत्र हुआ। उसका नाम महीपाल पड़ा और वह बड़े लाड़-प्यार से पाला-पोसा जाने लगा।

राजा सोया। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। सहसा हर्षपाल की नींद टूट गई। कहीं से मधुर-गान की आवाज़ उसके कानों में आने लगी। मन्त्र-मुग्ध सा हर्षपाल उठा और अपने किले से निकल कर उस ओर चल पड़ा, जहाँ से वह मीठी तान आ रही थी।

कुछ दूर जाने पर राजा ने देखा कि सामने एक सुन्दर उपवन है। उस उपवन के बीचों-बीच एक निर्मल सरोवर है। उस के तट पर सहेलियों के बीच बैठी हुई, एक सुन्दर गन्धर्व-कन्या वीणा पर गा रही है।

दृष्टि पड़ते ही उस वीणा-वादिनी ने हर्षपाल के मन को मोह लिया। राजा ने

एक दिन की बात है कि हर्षपाल जङ्गल में शिकार खेल रहा था। बहुत भटकने पर भी उस दिन कोई शिकार उसके हाथ न लगा। राजा भटकता-भटकता उस घने जङ्गल में बड़ी दूर तक घुसता चला गया। वह बहुत थक गया था और भूख-प्यास के मारे कदम उठाया न जाता था। प्यास बहुत तेज़ हो गई थी। वह चारों ओर झरने-तालाब की खोज करने लगा। खोजते-खोजते उसे दूर

पर एक कुटी दिखाई दी। उसमें जङ्गल का राजा किरात-राज रहता था। उस कुटी में एक सुन्दरी युवती भी दिखाई दी। वह थी किरात-राज की पुत्री 'मन्दाकिनी'।

पानी माँगने पर इठलाती, बल खाती वह बाहर आई और एक लोटे में पानी ले आई। उस युवती के हाव-भाव देखते ही राजा का मन बेकाबू हो गया। उसने उस युवती को अपनी पत्नी बना लिया और उस के साथ किले में लौटा।

मन्दाकिनी ने अपनी चतुरता से प्रजा का मन भी मोह लिया। प्रजा सोचने लगी कि 'छोटी रानी तो बहुत अच्छी हैं; आदमी शील से पहचाना जाता है, जात से नहीं।' यह सोच कर लोगों ने सन्तोष कर लिया। हर्षपाल मन्दाकिनी के साथ सुख से रहने लगा।

सौभाग्य से मन्दाकिनी के भी एक लड़का पैदा हुआ। अब तो राजा उसका गुलाम हो गया। वह उसके इशारों पर नाचने लगा।

इससे मन्दाकिनी का मिजाज़ भी बदला। वह अपनी सौत को पटरानी के पद से हटाने के लिए तरह-तरह की साजिशें खड़ी करने लगी। इन कुचक्रों के मारे बड़ी रानी नाकों दम हो गई। हालत यहाँ तक पहुँची कि छोटी रानी ने रनवास की दासियों को भी अपनी ओर कर लिया और गन्धर्व-कुमारी का जीना भी दूभर बना दिया। दरबारी तो उस की मुट्ठी में थे ही! धीरे-धीरे उसने राजा की भी परवाह करनी छोड़ दी।

बेचारी गन्धर्व-कुमारी चारों ओर से लाचार हो गई थी। उसने देख लिया कि मन्दाकिनी ने राजा पर जादू-सा कर दिया है। उसने सोचा—'नाम के लिए मैं पटरानी हूँ। नौकर-चाकर भी मेरी नहीं सुनते। मैं रानी कैसी? अब तो छोटी रानी का राज है! राजा उसकी कोई बात नहीं टाल सकता। फिर यहाँ रह कर नाहक अपनी

बेइज़्ज़ती क्यों कराऊँ? बेटा महीपाल तो एक-न-एक दिन राजा बनेगा ही। राज-कुल का नियम तो कोई नहीं तोड़ सकता। और जब वह राजा होगा, तो मैं भी लौट आऊँगी। तब तक कहीं जाकर छिप रहूँ।' यह सोच कर एक रात वह चुपके से उठी और अन्धकार में अदृश्य हो गई।

आँख की किरकिरी सौत को इस तरह गायब हो जाते देख मन्दाकिनी को बेहद खुशी हुई। उसने सोचा—'अब उस चुड़ैल के लड़के की खबर लूँ ज़रा! देखूँ! अब मेरे लड़के को राजा होने से कौन रोक सकता है?'

इस तरह मन्दाकिनी ने अपने लड़के अर्धपाल को युवराज बनाने का सङ्कल्प कर लिया। सौतेले राजकुमार के प्रति उसका व्यवहार और भी कठोर बन गया। दरबारी लोग तो उसके कठपुतले ही थे! प्रजा उसे चाहती भी थी। धीरे-धीरे उसने पण्डितों, पुरोहितों और धर्माचार्यों को भी अपनी मुट्ठी में कर लिया।

सौतेले लड़के के प्रति द्वेष और राजगद्दी के प्रति मोह मन्दाकिनी के मन में इतना बढ़ा कि वह एक भीषण कर्म करने पर उतारू हो गई। उसने सोचा—'इसके जीते-जी एक तो मेरे लड़के को गद्दी नहीं मिलेगी, और अगर मिल भी गई तो वह उस पर ज़्यादा दिन टिक न सकेगा। जब तक मेरी आँख का यह काँटा खड़ा रहेगा, तब तक मेरी आँखों के तारे के लिए खतरा बना रहेगा।' यों उसके दुष्ट हृदय में विष का यह पौधा तेज़ी से लहलहाने लगा।

चिन्ता-वश मन्दाकिनी के लिए खाना-पीना हराम हो गया। शीघ्र ही उसकी अभिलाषा के अनुकूल परिस्थिति भी उत्पन्न हो गई।

* * *

उस वर्ष मल्लाण-राज्य में भीषण अकाल पड़ा। दो तीन साल से पानी नहीं बरसा था। किसी के घर में अन्न का एक कण भी न रह गया था। हरियाली तो कहीं नाम को भी न थी। आखिर पेड़ों के पत्ते तक सूख गए थे। जगह-जगह दरारें क्या फट गई थीं कि धरती माता की फटी छाती देख कर सब को डर लगता था। सर्वत्र हाहाकार मचा हुआ था। जगह-जगह आदमियों और जानवरों की हड्डियों के बिखरे ढेर नज़र आते थे।

ऐसे समय उस राज में एक अजीब अफ़वाह उड़ी। जगह-जगह लोग काना-फूसी करने लगे—'राजा ने गन्धर्व-कुमारी से विवाह करके घोर पाप किया था। क्योंकि गन्धर्व देवता होते हैं। इस अपवित्र विवाह से राजा के पुत्र भी हुआ। इसी से देव-गण गुस्सा हो गए हैं। गन्धर्व-कुमारी तो अदृश्य हो गई; लेकिन इस अपराध का दण्ड अब हमें भुगतना पड़ रहा है।'

मालूम नहीं, यह अफ़वाह किसने उड़ाई थी। लेकिन बिजली की तरह यह राज्य के कोने-कोने में फैल गई। जब इसकी खबर राजा के कानों तक पहुँची, तो वह बहुत व्याकुल हुआ और सोचने लगा—'क्या सचमुच यह सब मेरे ही पापों का फल है! फिर तपस्वी ने मेरे लिए वह फल क्यों दिया था? अन्यथा न मैं वह ब्याह करता और न यह सन्तान ही होती!'

राजा इस तरह घोर असमञ्जस में पड़ गया और तय न कर सका कि क्या किया जाए। उसके इस असमञ्जस को ताड़ कर रानी ने सुझाया कि इस विषय में राज-पुरोहित की सलाह लेनी चाहिए; क्योंकि ऐसे विषयों पर निर्णय करने का अधिकार उन्हीं को होता है। बस, राजा ने राज-पुरोहित को बुला भेजा और उनकी राय

माँगी। राज-पुरोहित ने कहा—'ऐसा विवाह वास्तव में शास्त्राचार के विरुद्ध है।' 'फिर प्रायश्चित्त क्या है?' राजा ने पूछा। पुरोहित जी ज़रा हिचकिचाए। उनकी आँखों के सामने महीपाल की मासूम सूरत एक बार फिर गई। इतने में चौंक कर उन्होंने देखा कि रानी की भौंहें तन गई हैं। उन्होंने सोचा—'भगवन! यह कैसा पाप मेरे सिर मढ़ा जा रहा है?' लेकिन लाचार थे। क्या करते? थरथराते हुए बोले—'राजन्! राजाज्ञा टाली नहीं जा सकती। इसलिए हमारा निवेदन सुनिए! देश के सिर से इस सङ्कट को टालने का एक ही उपाय है। शास्त्रों का कहना है कि देव-जाति की स्त्रियों से उत्पन्न सन्तान को पुनः देव-लोक भेज देना चाहिए।' व्याकुल होकर राजा बोला—'मेरी समझ में नहीं आया। आप ज़रा साफ़-साफ़ कहिए!' इस पर राज-पुरोहित जी बोले—'राजन्! आप मुझे एक दिन की अवधि दीजिए। मैं अन्य पुरोहितों से भी पूछ लूँ। कल आकर मैं अपनी राय साफ़-साफ़ बता दूँगा!'

दूसरे दिन राज-पुरोहित ने आकर राजा से कहा—'राजन्! मेरी ही नहीं, अन्य पुरोहितों की भी यही राय है कि देश को दुष्काल से बचाने के लिए महीपाल को स्वर्ग भेज देना चाहिए। सद्गति के लिए शास्त्रानुसार, काली मैया के सामने उसका बलिदान कर देना चाहिए।'

यह भयङ्कर समाचार सुनते ही राजा हतचेत हो गया। मालूम होता था, मानों उसके हृदय को हज़ारों बर्छियों से कोई छेद रहा हो। उसने कभी नहीं सोचा था कि राजा भी कभी इतना बेबस हो सकता है। जब कि राज्य की सारी प्रजा, दरबारियों और पण्डित-पुरोहितों की यही राय थी तो अकेला वह क्या कर सकता था?

फिर पुत्र का मोह ! ऐसा कौन अभागा होगा, जिसकी छाती ऐसे शोक से टूक-टूक न हो ! उधर प्रजा की पुकार दिन-दिन बढ़ती जा रही थी। आखिर राजा टाल न सका। परिस्थितियों के दबाव में पड़ कर पुत्र-बलि के लिए उसने हामी भर दी।

बलि-दान की तैयारियाँ होने लगीं। भद्र-काली के मन्दिर के सामने बलि-वेदी बनाई गई। बलि के लिए जो दिन निश्चित हुआ, उस दिन राज्य की सारी प्रजा उस मन्दिर के पास जमा होने लगी। जहाँ नज़र पड़ती, नर-मुण्ड ही दिखाई देते थे। फिर भी चारों ओर सन्नाटा था !

उधर अबोध राजकुमार महीपाल राज-महल में उछल-कूद रहा था। उस बेचारे को क्या पता कि उसके नन्हे सिर के लिए इतनी बड़ी तैयारी हो रही है ! पुरोहित-गण आए और यथा-विधि से उसे नहला-धुलाया। फिर सजा-धजा कर बाजे-गाजे के साथ उसे मन्दिर के पास ले आए। बलि-वेदी पर खड़ा करके मन्त्रोच्चार करने लगे। बालक महीपाल अचरज से उस भीड़ को देख रहा था ! इतनी बड़ी भीड़ उसने कभी नहीं देखी थी।

इतने में राजा हर्षपाल, जो यहीं कहीं मुँह छिपाए खड़ा था, पागल की तरह वेदी के पास दौड़ा आया। लपक कर उसने अपने लाड़ले बेटे को गोदी में उठा लिया और उपस्थित जन-समूह को पुकार कर कहने लगा—'प्यारे भाइयो ! पुरोहितों ने मेरे पहले विवाह को शास्त्र-विरुद्ध ठहराया है। सब लोगों की राय है कि उसी विवाह के कारण देवता मुझसे अप्रसन्न हैं और इसी से इस देश में यह भयङ्कर अकाल पड़ा है। उस पाप के प्रायश्चित्त के लिए मेरे पुत्र की बलि दी जा रही है। प्रजा की पुकार अनसुनी नहीं की जा सकती। लेकिन मेरी

एक विनती है। राजा के नाते नहीं, एक पिता के नाते।'

राजा इतने कातर स्वर में बोल रहा था कि लोगों की आँखें भर आईं।

सब लोग चुप थे। कुछ रुक कर राजा कहने लगा—'यह अकाल न पड़ता तो महीपाल एक दिन इस देश के सिंहासन पर बैठता और राज-मुकुट उसके माथे पर होता। लेकिन विधि का लिखा कौन मिटा सकता है! कहाँ राज सिंहासन और कहाँ बलि-वेदी! फिर भी मैं चाहता हूँ कि एक बार इस अभागे के सिर पर राज-मुकुट रख कर देखूँ और अपनी आँखें ठण्डी कर लूँ। देखूँ, काटे जाने वाले इस सिर पर राज-मुकुट कैसा सुहाता है! बस, और मैं कुछ नहीं चाहता!' राजा ने यह बात इतने करुण-स्वर में कही कि लोगों का हृदय पानी-पानी हो गया। रानी डर गई कि कहीं बना-बनाया खेल बिगड़ न जाए।

तब राज-पुरोहित ने उठ कर कहा—'हमारे प्रभु प्रजा को पुत्र से भी बढ़ कर मानते हैं। ऐसा कौन अभागा होगा, जो ऐसे राजा की यह छोटी सी बात न माने!'

जितने लोग वहाँ जमा थे सभी हर्षपाल की जय बोलने लग गए। राजा ने धीरे से रत्न-जटित मुकुट अपने सिर से उतारा और बड़े प्यार से महीपाल के शीस पर रख दिया। राजकुमार के सिर पर मुकुट इतनी शोभा देता था कि देख कर सब लोग दङ्ग रह गए। उधर रानी की व्यग्रता पल-पल बढ़ती जा रही थी। वह पुरोहित और बधिक की ओर क्रुद्ध दृष्टि से देखने लगी। तब राज-पुरोहित ने वेद-मन्त्र पढ़े और 'जय चण्डिके! जय दुर्गे!' कह कर देवी की स्तुति की। बधिक ने खड्ग ऊँचा किया। लाखों नज़रें उस अबोध मुकुट-धारी बालक के मुख पर गड़ गईं। ऐसे समय—

[सशेष]

चमगादड़ कैसे अन्धेरे में उड़ता है ?

करीब छः करोड़ बरस से चमगादड़ अँधेरे में उड़ता रहा है। राह जानने के लिए वह एक ऐसी प्रणाली से काम चलाता है, जो मनुष्य के हाल के आविष्कार 'रादार' से बहुत मिलती-जुलती है। 'रादार' रेडियो-तरङ्ग उत्पन्न करता है। जब ये तरङ्गें किसी चीज़ से टकराती हैं तो उसकी प्रतिध्वनियाँ लौट आती हैं। इस तरह रादार उन वस्तुओं का पता लगा लेता है। चमगादड़ भी एक तरह की सूक्ष्म स्वर-तरङ्गें बाहर भेजता है। ये चीखें नहीं हैं जो तुम्हें कभी कभी सुनाई पड़ती हैं। चमगादड़ के रादार-सिग्नेल इतने सूक्ष्म होते हैं कि उन्हें आदमी के कान नहीं सुन सकते। चमगादड़ के सिवा शायद ही किसी पशु-पक्षी के कान उन्हें सुन सकें!

चमगादड़ जहाँ उड़ता है, उस जगह को ये आवाज़ें भर देती हैं। जब ये किसी चीज़ से, चाहे वह पहाड़ जैसी बड़ी हो, या महीन तार जैसी छोटी हो, टकराती हैं तो चेतावनियाँ लौट आती हैं और चमगादड़ रुख बदल देता है। इस बात का पता लगा हार्वर्ड विश्वविद्यालय के दो वैज्ञानिकों को। राबर्ट गेलांबोस और डोनाल्ड ग्रिफिन ने साबित किया कि चमगादड़ अंधे होने पर भी उड़ सकते हैं; लेकिन कान और मुँह बन्द कर देने पर भटकने लगते हैं। उस से स्पष्ट था कि वे कुछ कहने और सुनने के ज़रिए ही अँधेरे में चीज़ों का पता लगाते हैं। अनेक ध्वनि-ग्राही साधनों का उपयोग करके इन वैज्ञानिकों ने जान लिया कि चमगादड़ उड़ने के लिए तैयार होते ही दस-फी-सेकण्ड के हिसाब से स्वर-तरङ्ग भेजने लगता है। हवा में जाने के बाद तीस-फी-सेकण्ड भेजने लगता है। चेतावनियाँ लौटने लगती हैं तो ये तरङ्गें पचास-फी-सेकण्ड हो जाती हैं। बस, चमगादड़ उस तरफ रुख बदल देता है जिधर प्रतिध्वनियाँ नहीं आतीं। ये अजीब तरङ्गें पैदा करने के लिए चमगादड़ के असाधारण शब्द-साधन होते हैं। उनकी शब्द-नालिका इतनी बड़ी होती है कि देख कर अचरज होता है। खास कर आफ्रिका के एक जात के चमगादड़ों में यह शरीर के अन्दर एक तिहाई जगह ले लेती है। इन स्वर-तरङ्गों के बिना चमगादड़ अन्धेरे में कभी नहीं उड़ सकते।

पुराने ज़माने में काञ्चनपुर पर कालकेतु नाम का राजा शासन करता था। वह बड़ा घमण्डी था। उसका ख्याल था कि राजा भगवान के बराबर है और उसका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता।

बहुत से लोगों ने उसे समझाया—'लक्ष्मी बड़ी चञ्चला होती है। फिर राज्य-लक्ष्मी का तो कहना ही क्या? दुनिया में बहुत से राज उठे और गिरे। इसलिए अधिकार का गर्व न करना चाहिए।' लेकिन घमण्डी कालकेतु उनकी बातें क्यों सुनने लगा? वह समझता था कि कोई उसे गद्दी पर से हटा नहीं सकता। इसलिए छोटे-बड़े, अमीर-गरीब सबकी बेइज़्ज़ती करता रहता था। उस राज में जितने लोग थे सभी उसे देख कर जलते थे।

काञ्चनपुर में एक बड़ा ही प्रसिद्ध मन्दिर था। उस मन्दिर में हर साल बड़ी धूम-धाम से एक उत्सव होता था, जिसे देखने के लिए दूर-दूर के लोग भीड़ लगा कर आया करते थे। उस उत्सव की प्रशंसा सुन कर कालकेतु एक बार उसे देखने चला। उसके पीछे मन्त्री-गण, दरबारी, सामन्त, चारण और नौकर-चाकर भी चले।

राजा जब मन्दिर में पहुँचा तो पण्डित लोग पुराण बाँच रहे थे। पुरोहित-गण मधुर-स्वर से मन्त्रोच्चार कर रहे थे। राजा अन्दर गया तो पुरोहित एक श्लोक पढ़ रहा था। उसका मतलब था—'हे ईश्वर! तुम सर्व-शक्तिवान हो। चाहो तो राजा को रङ्क बना सकते हो और रङ्क को राजा।'

यह श्लोक सुन कर राजा कालकेतु को ऐसा लगा, जैसे उसके शरीर में सैकड़ों बिच्छुओं ने डङ्क मार दिया हो। अपने सहज राज-दर्प के कारण उसने सोचा—'क्या कहता है यह कङ्गाल ब्राह्मण! ईश्वर

शोभाराम पांडे

राजा को रङ्क और रङ्क को राजा बना सकता है ! कैसी पागलों की सी बात है !'

गर्व-वश राजा यों सोचने ही लगा था कि एक अजीब खुमारी ने उसे घेर लिया। बार-बार जम्हाइयाँ आने लगीं और पलकें नींद के बोझ से दबी जाने लगीं। उसने आँखें मूँद लीं। जब थोड़ी देर बाद आँखें खुलीं तो उसने देखा कि चारों ओर अन्धेरा है। मन्त्री, दरबारी, चारण, नौकर-चाकर, कोई वहाँ नहीं। कहीं टिमटिमाते दीए की रोशनी भी नहीं। उस अन्धेरे में हाथ को हाथ नहीं सूझता था।

अब तो राजा कालकेतु घबरा गया। सारी देह पसीने से तर हो गई। प्यास के मारे गला सूखने लगा। किसी तरह टटोल कर वह आगे बढ़ा और फाटक के पास पहुँचा। जोर से फाटक को झकोरने और चिल्लाने लगा—'अरे कोई है ! खोलो फाटक ! मैं राजा हूँ। राजा कालकेतु ! खोलो फाटक ! नहीं तो....' वह इतने ज़ोर से चिल्लाया कि सारा मन्दिर गूँज उठा। मन्दिर के बाहर फाटक पर दो पहरेदार खड़े थे। अन्दर की आवाज़ें सुन कर उनको बहुत अचरज हुआ। उन दोनों ने सोचा—'यह क्या ! अभी तो महाराज पूजा-पाठ खतम होते देख अपने दरबारियों के साथ बाहर निकले थे ! हमने अपनी आँखों उन को जाते देखा ! फिर यह कौन है जो 'राजा-राजा' कह कर अन्दर से चिल्ला रहा है ! यह कोई पागल या पियक्कड़ तो नहीं है !' वे दोनों आपस में कहने लगे।

कुछ भी हो, दरवाज़ा तो खोलना ही था। पहरेदारों ने दरवाज़ा खोला। तुरन्त एक आदमी बिजली की तरह झपट कर बाहर आया और अन्धेरे में गायब हो गया। पहरेदारों ने दौड़ कर उसे पकड़ना चाहा। लेकिन तब तक वह दूर निकल गया था।

कालकेतु बेतहाशा दौड़ कर राज-महल में पहुँचा। वहाँ जाकर चिल्लाने लगा—'अरे! कौन है वहाँ? बुला तो ला मन्त्री और दरबारियों को! किस की इजाज़त से वे लोग मन्दिर से चले आए थे? हमें वहाँ सोते छोड़ कर खिसक जाने की मज़ाल कैसे हुई उनकी? जाओ, उन बेहूदों को घसीट लाओ यहाँ!' वह अपने सिपाहियों को हुक्म देने लगा।

'भई! पकड़ लो इसे! राजा के पास ले चलेंगे! मारो नहीं, कोई पागल जान पड़ता है!' पहरेदारों के सरदार ने कहा। तुरन्त वे लोग कालकेतु को पकड़ कर राजा के पास ले गए। अपने ही जैसे एक आदमी को राज-वेष में गद्दी पर देख कर बेचारे कालकेतु की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई। वह मुँह बाए देखता रह गया।

कालकेतु के रूप में जो देव-दूत गद्दी पर बैठा हुआ था, उसे कालकेतु को देख कर हँसी आई। 'तुम कौन हो भाई?' उसने पूछा।

'मैं कौन हूँ!' क्रोध के मारे कालकेतु का गला रुँध गया। आखिर किसी तरह गला साफ कर वह बोला—'मैं हूँ राजा कालकेतु! समझ गए!' इतना कह कर वह अपने सिपाहियों की ओर मुड़ा और चिल्लाया—'यह तो कोई धोखेबाज़ है! मेरा भेष बना कर गद्दी पर आ बैठा है! पकड़ लो इसे!'

देवदूत ने देखा कि रस्सी तो जल गई; मगर उसकी ऐंठन अभी नहीं गई है। वह मुसकुरा कर बोला—'यह तो शराबी मालूम होता है। आदमी तो होशियार जान पड़ता है। दरबार में किसी न किसी काम आ ही जाएगा! कैद कर रखो इसे! जब नशा उतरेगा तो देखा जाएगा।' कहने के साथ सिपाहियों ने राजा कालकेतु
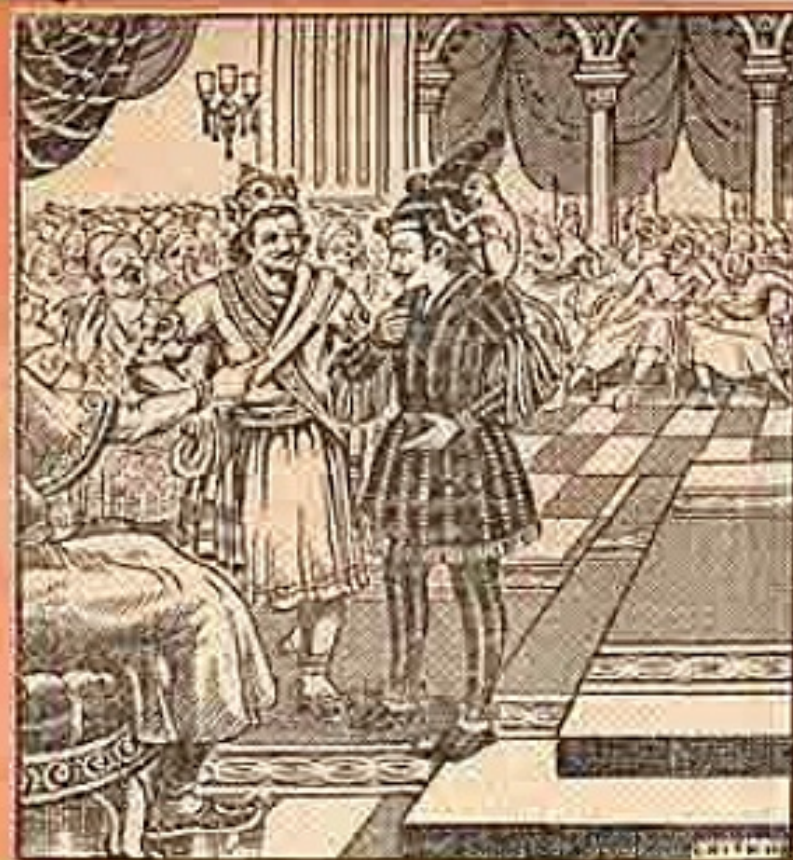
को ले जाकर एक दुर्गन्ध भरी काल-कोठरी में कैद कर दिया। बेचारा बहुत चिल्लाया— 'क्या समझ रखा है मुझे? मैं कालकेतु हूँ। एक-एक को शूली पर चढ़ा दूँगा!'

लेकिन उसकी परवाह करने वाला कौन था वहाँ? उल्टे वे लोग हँसने लगे। इससे वह और भी बौखला उठा।

कुछ दिन बाद उस देवदूत ने राज-महल में एक बड़ी भारी दावत का इन्तज़ाम किया। उस दावत में देश-विदेश के बहुत से राजा-रईस, अमीर-उमराव बुलाए गए। सारा राज-भवन खचा-खच भर गया था।

जब सब लोग अपनी-अपनी जगह बैठ गए तो देवदूत ने कालकेतु को, जो काल-कोठरी में बन्द था, वहाँ ले आने की आज्ञा दी। सिपाही कालकेतु को पकड़ कर तुरन्त वहाँ ले आए।

यह क्या! उसकी आज यह कैसी हालत थी? वह विदूषक की तरह रङ्ग-बिरङ्गे चीथड़ों की पोशाक पहने था। सिर पर एक लम्बी नुकीली टोपी पड़ी थी। हाथ में एक टेढ़ा-मेढ़ा, लम्बा-सा डण्डा था। उसके कन्धे पर आँखें मटकाता हुआ एक बन्दर का बच्चा बैठा था।

देवदूत ने इशारा करके उपस्थित सामन्तों और अमीरों से पूछा—'आप लोग इस मदारी को जानते हैं?' यह सुन कर कालकेतु दाँत किटकिटा कर बोला—'भाइयो! आप लोगों ने मुझे पहचाना नहीं? यह मदारी नहीं, राजा कालकेतु है! और यह जो राजा बना हुआ है, यह तो कोई धूर्त है जो भेस बदल कर आप लोगों को धोखा दे रहा है!' लेकिन उसकी बात सुन कर लोग खिल-खिला कर कहने लगे—'वाह! यह मसखरा तो बड़ा चतुर है। हँसाने की कला खूब जानता है!' सब लोग तालियाँ पीट कर कहकहा लगाने लगे। कालकेतु लहू

की घूँट पीकर रह गया। दावत खतम हो गई। कालकेतु को फिर काल-कोठरी में डाल दिया गया।

इस तरह कुछ दिन और बीत गए। आखिर एक रोज़ देवदूत ने कालकेतु को बुलवा कर पूछा—'अब भी समझ में आया कि तुम कौन हो? बताओ तो अब?' उसका प्रश्न सुनते ही कालकेतु गश खाकर गिर पड़ा। जब होश में आया तो रोते हुए देवदूत के चरणों में लोट कर बोला—'भगवान! क्षमा करो! मैं कौन हूँ? मैं तो अब एक पगला मात्र हूँ। किसी समय भारी घमण्डी था। उस समय मैं आदमी की क्या, भगवान की भी परवाह नहीं करता था। कैसा बेवकूफ था मैं? मैंने सोचा था कि राजा भगवान से भी बड़ा होता है। लेकिन भगवान की कृपा जब मुझ पर से हट गई तो मेरे दरबारी ही मुझे पहचान नहीं सके। अब मेरी आँखें खुल गई हैं। मेरा घमण्ड चूर-चूर हो गया है। अब मुझे मालूम हो गया कि मैं कितना तुच्छ जीव हूँ।'

इस पर देवदूत ने सन्तुष्ट होकर सिर हिलाया और दोनों हाथ उठा कर आशीर्वाद दिया—'अच्छा हुआ जो घमण्ड चला गया। अब तुम सचमुच राजा हो गए हो। उठो! अब तुम फिर कालकेतु हो। अपना राज-वेष धारण करो।'

कालकेतु ने जब तक सर उठा कर देखा, देवदूत अदृश्य हो गया था। वह फिर पहले का कालकेतु बन गया था। पोशाक बदल गई थी और मस्तक पर मुकुट शोभा दे रहा था।

लेकिन कालकेतु को अब अपनी असलियत मालूम हो गई थी। उस दिन से उसने कभी किसी का अपमान नहीं किया। छोटे-बड़े, अमीर-गरीब सब का समान-भाव से आदर करने लगा। इससे सब लोग उसे प्यार करने लगे।

नन्हीं मुन्नी की आदत थी कि वह हर सवेरे अपने माँ-बाप के पहले जाग जाती और चीख कर उनकी नींद भी तोड़ देती। एक दिन उसके माँ-बाप ही पहले जाग गए। थोड़ी देर बाद उन्हें मुन्नी के कमरे से चीखने की आवाज सुनाई दी। वे दौड़े आए तो मुन्नी रोती हुई बोली—'माँ! मैंने जाग कर देखा तो तुम यहाँ नहीं थीं और पिताजी भी नहीं। फिर अपनी खाट भी खाली देखी तो सोचा कि मैं भी यहां नहीं हूँ। बस, मैं रोने लगी।'

—◊—

एक बार बाढ़ आई और एक आदमी के घर में पानी घुस आया। बाढ़ उतर गई तो उसकी पत्नी बोली—'देखो तो, सारा घर बरबाद हो गया। जहाँ देखो, वहीं कीचड़ और कूड़ा!'

वह आदमी बोला—'कोई परवाह नहीं: अब चूहे तंग नहीं करेंगे।'

—◊—

एक अध्यापक लड़कों को बता रहा था कि कुछ पदार्थ गरमी में फैलते और सरदी में सिकुड़ते हैं। अंत में उसने पूछा—" ऐसी और कोई चीज बताओ तो?"

एक लड़के ने कहा—'जी, दिन! दिन गरमी में फैल कर लम्बा और सरदी में सिकुड़कर छोटा बन जाता है।'

एक छोटी लड़की के हाथ में गुड़िया देख कर अध्यापिका ने पूछा—'अरी, तेरी गुड़िया का नाम क्या है?'

लड़की बोली—'हुश! मैं नहीं चाहती कि मेरी बच्ची अपने को गुड़िया समझे।'

—◊—

घण्टा बज गया और लड़के स्कूल से बाहर आने लगे। एक लड़के ने अध्यापक के पास जाकर पूछा—"जी! मैंने आज स्कूल में क्या सीखा? हर रोज घर जाने पर मेरे पिताजी यही जानना चाहते हैं।'

—◊—

गवैए ने गाना खतम किया। एक लड़के ने उसके पास जाकर पूछा—'क्या आप भैरवी राग नहीं गा सकते? मुझे वह राग बहुत पसन्द है।

'अरे, अभी मैंने वही तो गाया था।' गवैए ने ताज्जुब के साथ कहा।

'अच्छा? मुझे यह बात पहले ही मालूम होती तो मैं गाना गौर से सुनता।' लड़का बोला।

—◊—

लम्बा-चौड़ा उपदेश देने के बाद अध्यापक ने पूछा—'अच्छा! बताओ! भगवान से अपने अपराध क्षमा कराने के लिए हमें पहले क्या करना चाहिए?'

'अपराध करना चाहिए।' लड़का झट बोला।

पूरा करो !

*

नीचे लिखे हर शब्द में एक-एक अक्षर गायब है। अक्षर भर दोगे तो शब्द पूरा हो जाएगा। पूरे शब्द का जो माने होता है वह बगल में दिया गया है।

१. सोना . . . —चन
२. सींचना . . . —चन
३. ठगना . . . —चन
४. बाँचना . . . —चन
५. मुक्त करना . . —चन
६. हज़म होना . . —चन
७. माँगना . . . —चन
८. सोचना . . . —चन
९. आँख . . . —चन
१०. सिकुड़ना . . —चन

पूरा न कर सको तो जवाब के लिए ५६-वाँ पृष्ठ देखो !

बताओ तो ?

*

१. तीन अक्षर का शब्द, भारत का एक प्रान्त है। अर्थ होता है बौद्ध भिक्षुओं का आश्रम। दूसरा अर्थ होता है सुख से विचरना। पहला अक्षर काट देने से माला बन जाता है।

२. तीन अक्षर, अर्थ होता है द्वार। आखिरी अक्षर काट देने से शरीर बन जाता है। भारत की राजधानी है।

३. पाँच अक्षर, सिक्खों का प्रसिद्ध तीर्थ। आखिरी दोनों अक्षर काट देने से सुधा बन जाता है। पहला एक और अन्त के दो अक्षर काट देने से मुर्दा बनता है। पहले तीनों अक्षर काट देने से तालाब बनता है। दूसरा और तीसरा अक्षर काट देने से प्रभाव बनता है।

४. तीन अक्षर, हाथ का गहना। पहला अक्षर काट देने से दाना बनता है। आखिरी अक्षर काट देने से राजा विराट के दरबार में युधिष्ठिर का नाम बनता है।

बता न सको तो जवाब के लिए ५६-वाँ पृष्ठ देखो !

लक्ष्मी देवी के पुत्र का नाम कामदेव था। कामदेव बहुत ही सुन्दर पुरुष था। 'जोड़ी ठीक मिलनी चाहिए!' यह सोच कर लक्ष्मी देवी ने तीनों लोक छान कर रती देवी नाम की एक सबसे सुन्दरी कन्या के साथ कामदेव का ब्याह कर दिया। नई जोड़ी सुख से रहने लगी।

एक बार इस दम्पति में लड़ाई हो गई। अपराध पुरुष का था। इसलिए रती देवी रूठ गईं और पति से न बोलीं। कामदेव चिन्तित होकर एक जगह जाकर लेट गया।

इतने में उसका मित्र अनिल वहाँ आया। उसने उसकी चिन्ता का कारण जानना चाहा। कामदेव ने सारा किस्सा कह दिया।

मित्र अनिल ने सलाह दी—'इसी जङ्गल में 'राग-वल्लरी' नाम की एक लता है। उस लता में सतरङ्गे फूल खिलते हैं। मैं जाता हूँ। उन फूलों का मकरन्द तुम्हें ला देता हूँ। जब रती देवी सो जाए तो उस मकरन्द की दो बूँदें उनकी पलकों पर डाल देना। जब तक वे जागें नहीं, तुम वहीं बैठे रहना। जागते ही उनकी नज़र तुम पर पड़ेगी। बस, उनका सारा क्रोध दूर हो जाएगा और वे तुम्हारे वश में आ जाएँगी।' यों अनिल ने उसे धीरज दिया। अनिल की बातें सुन कर कामदेव को बहुत आश्चर्य हुआ।

अनिल शीघ्र ही मकरन्द लाने चला गया। कामदेव वहीं उसकी राह देखता रहा। थोड़ी देर बाद वहाँ 'तपन! तपन! मुझे छोड़ मत जाना!' कहती किसी औरत की आवाज़ आई। कामदेव को कुतूहल हुआ। वह माया जानता था। इसलिए उस औरत को देखने के लिए अदृश्य हो गया।

दूसरे ही क्षण एक युवती वहाँ आई। उसका नाम छाया था और वह एक गन्धर्व की बेटी थी। वह तपन नाम के एक गन्धर्व-

कमलिनी देवी

कुमार पर मोहित थी। लेकिन तपन का प्यार अब उस पर नहीं रह गया था।

पहले तपन इसी छाया देवी पर लट्टू था। लेकिन पीछे उसका मन बदल गया। वह मनोरमा नाम की एक दूसरी गन्धर्व-कुमारी से प्रेम करने लग गया। अब वह छाया से पिण्ड छुड़ा लेना चाहता था।

बेचारी छाया बहुत घबरा गई थी। तपन का कहीं पता नहीं था। इसलिए वह उसकी खोज में निकली थी।

कामदेव को यह सारा किस्सा मालूम था। छाया को देखते ही उसे दया आ गई। उसने सोचा—'इस नारी के प्रति अन्याय न होने देना चाहिए।' इतने में उस का मित्र अनिल 'राग-वल्ली' का मकरन्द ले आया। कामदेव ने उससे छाया का सारा किस्सा कह सुनाया और अन्त में बोला—'जाओ! ढूँढो उस तपन को और डाल आओ ये बूँदें उसकी पलकों पर!' अनिल उलटे पैर चला गया।

थोड़ी दूर जाने पर उसने देखा कि एक गन्धर्व-कुमार और गन्धर्व-कुमारी एक जगह सो रहे हैं। अनिल ने सोचा कि यही तपन है। बस, उसकी दोनों पलकों पर मकरन्द की बूँदें डाल कर लौट गया।

लेकिन न तो वह पुरुष तपन था और न वह सोने वाली छाया थी। वह वसन्त नाम का एक और गन्धर्व-कुमार था और उस कुमारी का नाम था मनोरमा। यही वह कन्या थी जिसे देख कर तपन ने छाया को छोड़ दिया था। वह छाया की सखी ही थी। मनोरमा तपन से ब्याह करना नहीं चाहती थी। वह तो वसन्त से प्रेम करती थी। वसन्त भी उसे चाहता था। वे दोनों विहार के लिए वन में आए थे और थक कर सो गए थे। अनिल ने गलती से उन्हें तपन और छाया समझ लिया था।

इस तरह मकरन्द की वे बूँदें वसन्त की पलकों पर जा पड़ीं ! वसन्त ने जब आँखें खोलीं तो सबसे पहले छाया ही को देखा। छाया तपन को खोजती हुई आ पहुँची थी। फिर क्या पूछना था ! राग-वल्ली के प्रभाव से वसन्त अपनी बगल में सोई हुई प्यारी मनोरमा की बात भूल गया और छाया पर मुग्ध हो गया।

यह देख कर छाया को आश्चर्य भी हुआ और भारी दुख भी। उसने सोचा—'कैसा नीच आदमी है यह ! मनोरमा को वचन देकर अब मेरे पीछे पड़ा है ! इन मरदों का कोई ठिकाना नहीं !' यह सोच कर वह तुरन्त वहाँ से भाग चली। वसन्त भी उसके पीछे-पीछे चला।

वसन्त के चले जाने के कुछ देर बाद मनोरमा की नींद टूटी। उठ कर देखा तो वसन्त लापता था। वह एकदम घबरा उठी। सारा जङ्गल छान डाला। लेकिन वसन्त कहीं दिखाई न दिया। वसन्त के बदले उसे तपन दिखाई दिया जो छाया से बचने के लिए भागा फिर रहा था।

तपन मनोरमा को देखते ही खुशी से उछल पड़ा—'मनोरमा ! मैंने छाया से पिण्ड छुड़ा लिया है। तुम्हारे सिवा मैं अब और किसी को नहीं चाहता।' वह बोला। उसकी बात सुन कर मनोरमा को बहुत क्रोध आ गया। उसने गरज कर कहा—'दुष्ट, अधम ! तू ने मेरी सखी को धोखा दिया। अब मुझे भी धोखा देना चाहता है ! मेरा प्यारा वसन्त कहाँ गया ! मालूम होता है, तू ने ही उसे कहीं छिपा रखा है। बता तुरन्त, कहाँ छिपा छोड़ा है तू ने उसे !'

उसकी बातें सुन कर तपन भौंचक्का रह गया। 'मनोरमा ! सच कहता हूँ, मैं वसन्त का हाल कुछ भी नहीं जानता !'

इतना कह कर वह जल्दी-जल्दी वहाँ से चला गया। वसन्त को खोजती हुई मनोरमा भी चली गई।

कामदेव इसी समय अनिल के साथ आकाश-मार्ग से जा रहा था। उसने दोनों की बात-चीत सुन ली। सुनते ही समझ गया कि अनिल से कोई बड़ी भारी गलती हो गई है। चलते-चलते तपन की ओर उँगली उठा कर उसने पूछा—'तुमने इसी की पलकों पर बूँदें डाली थीं न!'

अनिल ने तपन को गौर से देख कर कहा—'नहीं, वह तो कोई दूसरा था! हाँ, लड़की तो वही है!'

'अच्छा! जो हो गया सो हो गया! अब तुम उस तपन का पीछा करो और उस के सो जाते ही मकरन्द की बूँदें उसकी पलकों पर डाल आओ। फिर जाकर छाया को ढूँढो और तपन के जागने के पहले ही उसे लाकर उसके सामने खड़ी कर देना!' कामदेव ने अनिल से समझा कर कहा।

अपनी गल्ती सुधारने के लिए अनिल तपन के पीछे-पीछे चला गया। थोड़ी दूर जाने के बाद तपन थक कर एक जगह सो रहा। बस, अनिल ने उसकी पलकों पर मकरन्द की बूँदें टपका दीं और छाया देवी को ढूँढ लाने के लिए दौड़ा।

थोड़ी देर बाद छाया भी दौड़ती-हाँफती वहीं आ पहुँची। उसके पीछे-पीछे वसन्त भी आया। उसे देख कर छाया चिल्ला उठी—'क्या कोई ऐसा दयावान पुरुष नहीं है, जो मुझे इस दुष्ट पापी के चंगुल से बचाए!'

उसका चिल्लाना सुन कर कामदेव और अनिल दौड़े आए और अदृश्य-रूप में तमाशा देखने लगे। छाया के चिल्लाने से तपन की नींद टूट गई। ज्यों ही छाया पर उसकी नज़र पड़ी, त्यों ही राग-वल्ली के

प्रभाव से उसके हृदय में प्रेम का स्रोत उमड़ पड़ा। वह उसे प्रेम से पुकारने लगा।

यह देख कर छाया दङ्ग रह गई। 'क्या यह वही तपन है जो उससे कन्नी कटाता फिरता था! नहीं, यह तो सपना मालूम होता है!' उसने सोचा। इतने में बसन्त ने आगे बढ़ कर कहा—'छाया! मैं तुमसे प्रेम करता हूँ। इसे चले जाने को कहो!' उसकी बात सुन कर छाया ने सोचा—'दोनों एक से एक बढ़ कर हैं।'

इतने में मनोरमा भी वहाँ आ पहुँची। उसने देखा कि छाया के वास्ते बसन्त और तपन दोनों लड़ने पर आमादा हैं। उसने सोचा—'यह सब छाया की करतूत है। शायद यह दुष्टा इन दोनों गन्धर्व-कुमारों से स्वयं ब्याह करना चाहती है।' यह सोच कर वह छाया को कोसने लगी। उसकी बातें सुन कर छाया रो-रोकर कहने लगी—'इसमें मेरा कोई दोष नहीं!'

इधर तपन और बसन्त दोनों भूखे बाघों की तरह एक दूसरे पर टूट पड़े। यह देख कर कामदेव ने सोचा—'नाहक दोनों की जान जाएगी।' तब उसने अपनी माया से पल में उन दोनों के बीच एक गहरी और चौड़ी नदी बहा दी। अब उस पार से बसन्त और इस पार से तपन एक-दूसरे पर लाठियाँ फेंकने लगे। लेकिन उन दोनों की लाठियाँ नदी में गिर कर बह गईं। दोनों दो किनारों पर खड़े एक-दूसरे को कोसते और धमकाते रहे। इधर रो-रोकर एक ओर छाया बेहोश हो गई और दूसरी ओर मनोरमा मूर्छित होकर गिर पड़ी।

यह देख कर कामदेव ने कहा—'अनिल! अब होश में आने के पहले ही छाया को उठा ले जाओ और तपन के पास छोड़ आओ!' अनिल ने वैसा ही किया। 'अच्छा, अब मनोरमा को भी उठाओ और

उस पार वसन्त के पास छोड़ आओ।' कामदेव ने कहा। अनिल कामदेव का हुक्म बजा लाया। फिर कामदेव ने कहा—'भाई! अभी हमारा काम खतम नहीं हुआ है। तपन और छाया तो जागने के बाद एक दूसरे को देख कर खुश होंगे। लेकिन नदी के उस पार वसन्त और मनोरमा को जागने पर कोई खुशी न होगी। क्योंकि 'रागवल्लरी' के प्रभाव से जागने के बाद भी वसन्त छाया की रट लगाए बैठा रहेगा। क्या इस औषध का प्रभाव किसी प्रकार दूर नहीं किया जा सकता?'

'क्यों नहीं?' इतना कह कर अनिल दौड़ कर गया और एक नई जड़ी ले आया। उस जड़ी का रस उसने वसन्त की आँखों में डाल दिया। बस, राग-वल्लरी का प्रभाव जाता रहा और वसन्त पहले की तरह मनोरमा से प्रेम करने लगा। यह जान कर कामदेव ने अपनी माया की नदी गायब कर दी। दोनों जोड़ियाँ हँसी-खुशी बातें करतीं चली गईं। जो कुछ बीता, उनको वह एक दुस्वप्न सा लगता था।

अब कामदेव ने पल भर भी देरी न की। तुरन्त दौड़ कर घर गया। देवी रती अभी सो रही थीं। उनकी मुँदी हुई पलकों की ओट से क्रोध स्पष्ट झलकता था। बस, कामदेव ने मकरन्द की बूँदें उनकी पलकों पर चुला दीं। फिर उनके जागने का इन्तज़ार करते हुए सामने बैठा रहा।

देवी रती जागीं। उनका सारा क्रोध काफ़ूर हो गया। 'प्यारे! तुम कहाँ गए थे? मुझे छोड़ कर क्यों चले गए? फिर कभी इस तरह चले तो नहीं जाओगे?' उन्होंने दीन-स्वर में कहा।

तब उनका हाथ पकड़ कर कामदेव ने, जो असली रहस्य जानता था, मुसकुरा कर कहा—'अब तुम्हें कभी मुझ पर गुस्सा भी नहीं आएगा!'

1. पोपली हंसी
2. क्यों भैया! किस फेर में हो!
3. पेटू मियाँ
4. स्मट साहब .....

गणित के खेल

[प्रेषक : भीखमचन्द छाजेड़]

*

$$\begin{array}{r} 152207 \\ \times 73 \\ \hline 11111111 \end{array}$$

बच्चो, इसी तरह 9 तक की जिस संख्या से 73 को गुना करोगे, वही संख्या नीचे 8 बार आ जाएगी।

यह तो तुम एक ही तरह की संख्या 8 बार लाए; अब ज़रा एक ही तरह की संख्या 9 बार लाने की रीति देखो:

$$\begin{array}{r} 12345679 \\ \times 9 \\ \hline 111111111 \end{array}$$

इसी तरह 9 तक की जिस संख्या को 9 बार लाना हो, उस संख्या से 9 को गुना करके देखो। यह बड़ा ही रोचक विषय है।

$111 \times 9 + 2 = 1001$
$222 \times 9 + 2 = 2002$
$333 \times 9 + 2 = 3003$
$444 \times 9 + 2 = 4004$
$555 \times 9 + 2 = 5005$
$666 \times 9 + 2 = 6006$
$777 \times 9 + 2 = 7007$
$888 \times 9 + 2 = 8008$
$999 \times 9 + 2 = 9009$

इस रीति में '1001' से '9009' तक आया हुआ है। उसी तरह उसके सामने '111' का अङ्क '999' तक आया हुआ है। इसकी यही विशेषता है।

$10101 \div 91 = 111$
$20202 \div 91 = 222$
$30303 \div 91 = 333$
$40404 \div 91 = 444$
$50505 \div 91 = 555$
$60606 \div 91 = 666$
$70707 \div 91 = 777$
$80808 \div 91 = 888$
$90909 \div 91 = 999$

चिर प्रतीक्षा

जापान की राजधानी टोकियो है। इस शहर में एक बड़ा विश्व-विद्यालय है। इस विश्व-विद्यालय में किसी समय एक प्रोफेसर थे। जिनका नाम था 'जोटो'।

प्रोफेसर जोटो ने एक कुत्ता पाल रखा था। उसका नाम था 'रीटा'। रीटा से उन को बड़ा प्यार था। वे उसे अपनी सन्तान की तरह चाहते थे। रीटा भी अपने मालिक को बहुत चाहता था। वह हमेशा छाया की तरह उनके साथ लगा रहता था।

अकसर ऐसा होता है कि बड़े-बड़े शहरों में नौकरी या दूसरे काम करने वाले बहुत से लोग शहर के एक छोर पर या आस-पास के छोटे-छोटे गाँवों में रहते हैं। इसमें कई सुविधाएँ होती हैं और वे भीड़-भड़ाके से बचे रहते हैं।

ऐसी जगहों से शहर में आने-जाने के लिए बसें और बिजली की रेल-गाड़ियाँ दौड़ती रहती हैं। प्रोफेसर 'जोटो' ऐसे ही शहर से दूर के एक छोटे से बङ्गले में रहते थे। वे बिजली की गाड़ी से रोज़ विश्व-विद्यालय आया-जाया करते थे।

जोटो साहब का बङ्गला स्टेशन से करीब आधे मील की दूरी पर था। विश्व-विद्यालय जाने का समय होते ही प्रोफेसर कपड़े-लत्ते पहन कर तैयार हो जाते। त्यों ही रीटा दुम हिलाता उनके साथ हो जाता।

स्टेशन तक वह उनके पीछे-पीछे जाता; मालिक के साथ वह गाड़ी का इन्तज़ार करता और गाड़ी छूट जाने के बाद अकेले बङ्गले पर लौट आता।

प्रोफेसर रोज़ शाम को चार बजे की गाड़ी से विश्व-विद्यालय से लौटते थे। इसलिए चार बजने के कुछ पहले ही रीटा स्टेशन पहुँच जाता था और मालिक की राह देखता रहता था। प्रोफेसर को गाड़ी से

रामचरण जोशी

उतरते देख वह खुशी से उछल पड़ता और पूँछ हिलाते दौड़ कर, उनके हाथ-पैर चूमने लगता। फिर मालिक के पीछे-पीछे वह घर लौट आता।

यों कई बरस बीत गए। एक दिन प्रोफेसर विश्व-विद्यालय गए थे कि अचानक हृदय-रोग का आक्रमण हुआ। देखते-देखते उनकी जान अब-तब में पड़ गई। विश्व-विद्यालय के प्राध्यापक वगैरह बहुत घबरा उठे। डाक्टर बुलाया गया।

लेकिन डाक्टर के आने के पहले ही जोटो साहब की आखिरी घड़ी नज़दीक हो गई।

आखिर मरणासन्न प्रोफेसर ने इशारे से प्राध्यापक को नज़दीक बुलाया और बहुत धीमे स्वर में कहा—'मेरी सारी पढ़ाई-लिखाई इसी विश्व-विद्यालय में हुई। मेरी सारी उमर यहीं कटी। सौभाग्य से मैं प्राण भी यहीं छोड़ रहा हूँ। अब देर नहीं है। मुझे बचाने की कोशिश बेकार है। बस, मेरी आखिरी इच्छा यही है कि मेरी लाश को भी यहीं कहीं दफ़ना दिया जाए। और कोई इच्छा नहीं।'

इतना कहते-कहते जोटो ने सदा के लिए आँखें मूँद ली। उनकी अंतिम इच्छा के अनुसार प्राध्यापक ने उनकी लाश विश्व-विद्यालय के अहाते में ही एक जगह दफ़नवा दी।

* * *

उस शाम को भी रींटा हर रोज़ की तरह स्टेशन पर पहुँचा। लेकिन चार बजे की गाड़ी से उसका मालिक न उतरा। बड़ी देर तक वह इन्तज़ार करता रहा। एक के बाद एक करके बहुत सी गाड़ियाँ निकल गईं। लेकिन उसका मालिक नहीं आया। चारों ओर जब अन्धेरा छा गया तो निराश होकर वह बङ्गले पर लौट गया। दूसरे दिन

वह बड़े तड़के फिर स्टेशन पहुँचा और शाम तक इन्तज़ार करता रहा।

इस तरह वह रोज़ तड़के स्टेशन आता और शाम तक इन्तज़ार करके मनहूस कदम रखते लौट जाता। कुछ दिन तक तो किसी ने उसकी ओर ध्यान न दिया। लेकिन धीरे-धीरे स्टेशन के कुली, टिकट-बाबू, स्टेशन-मास्टर वगैरह का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हुआ। उन लोगों ने सोचा—'किस का कुत्ता है यह? रोज़ तड़के आता है और शाम तक आने-जाने वाले लोगों को देखता बैठा रहता है?'

एक दिन किसी ने कहा—'यह स्वर्गीय ओटो साहब का कुत्ता है।' वे अचानक विश्व-विद्यालय में ही मर गए। इस बेचारे को पता नहीं कि अब वे नहीं लौटेंगे। वे तो ऐसी जगह पहुँच गए हैं जहाँ से कोई गाड़ी नहीं आती। यह बेचारा अपने उसी मालिक के लिए रोज़ यहाँ आता है और दिन भर इन्तज़ार करता बैठा रहता है।'

तब बहुत से लोगों ने कई तरह से रीटा को यह समझाने की कोशिश की कि उसका मालिक मर गया है। लेकिन बेचारा रीटा उनकी ज़बान कैसे समझ सकता? वह रोज़ उसी तरह आकर इन्तज़ार करता ही रहा।

समय बीतता गया। दिनों के बाद महीने, महीनों के बाद साल बीत गए। उस स्टेशन के बहुत से कर्मचारियों की अदला-बदली हो गई। कई नए-नए कर्मचारी आ गए। उन लोगों ने जब रीटा की कहानी सुनी तो उन्हें बहुत अचरज हुआ। मालिक के प्रति उस कुत्ते का यह अनोखा प्रेम देख कर सबके सब दङ्ग रह गए। रीटा के कारण उन सबके हृदय में ओटो साहब के लिए जगह बन गई। उन की स्मृति हरी रही।

रीटा रोज़ स्टेशन आता ही रहा। धीरे-धीरे वह चिन्ता से घुलने लगा। खाना-पीना छोड़ दिया। सूख कर काँटा हो गया। चलने-फिरने की भी ताक़त न रही। फिर भी स्टेशन पर आता ही रहा। अब तक ओटो साहब को मरे आठ साल हो गए थे।

एक दिन रीटा लड़खड़ाता, किसी तरह स्टेशन तक पहुँच तो गया, लेकिन लौट न सका। आधी रात को टोकियो शहर से आखिरी गाड़ी आई और रीटा ने एक लम्बी साँस लेकर आँखें मूँद लीं। बस, फिर उस की आँखें नहीं खुलीं।

रीटा के मरने की खबर सुन कर आस-पास के रहने वाले बच्चे-बूढ़े, औरत-मर्द सब की आँखें भर आईं। वे सोचने लगे—'यह कुत्ता था। लेकिन आदमी से कहीं वफ़ादार था! भला मालिक को और कौन इस तरह प्यार कर सकता है!' ये सभी लोग रीटा को बहुत चाहने लग गए थे। अपनी सन्तान से भी बढ़ कर उसे मानने लगे थे। बहुत से लोगों ने रीटा को अपने घर ले जाकर पालने-पोसने की कोशिश भी की थी! लेकिन वह किसी के घर नहीं गया। स्टेशन, नहीं तो मालिक का बङ्गला, इन्हीं दोनों जगह उस का जीवन बीता। उसके मरने की खबर पाते ही लोगों ने फूलों का एक रथ सजाया और रीटा की लाश को उस पर रख कर बड़ी धूम-धाम से जुलूस निकाला। दूर-दूर से आकर बहुत से लोग इस जुलूस में शामिल हुए।

यह जुलूस स्टेशन पर जाकर खतम हुआ। स्टेशन के सामने ही एक क़ब्र खोदी गई और उसमें रीटा को दफ़ना दिया गया। उस क़ब्र के ऊपर एक सङ्गमर्मर के पत्थर पर रीटा की सारी राम-कहानी खोद दी गई।

आज भी बहुत से लोग जाते हैं और स्टेशन के सामने सङ्गमर्मर पर खुदी हुई, उस अजीब कुत्ते की कहानी पढ़ कर अचरज करने लगते हैं।

पुलिन्द-नगर के राजा का नाम सुगुणसिंह था। सुगुणसिंह ने चालीस साल तक राज किया। उसके शासन में प्रजा बहुत सुखी थी और किसी को कोई कमी न थी।

आखिर जब सुगुणसिंह बूढ़ा हो गया तो एक रात उसने सोचा—'मैं तो अब कुछ ही दिनों का मेहमान हूँ। यह राज्य-भार अब और नहीं ढो सकता। अब तो युवराज का राज-तिलक कर देना चाहिए और फिर जङ्गलों में जाकर भगवान का भजन करना चाहिए।' यों सोचता राजा टहल रहा था। आधी रात हो गई थी। बरामदे के बाहर पूनों की चाँदनी छिटक रही थी। इतने में किले के घण्टा-घर ने 'टन-टन' करके बारह बजाए।

बूढ़े राजा ने मुड़ कर अपने पलङ्ग की ओर देखा तो उसकी आँखें चौंधिया गईं! यह क्या! सुनहरे बदन वाली यह कौन सुन्दरी, चाँदनी सी छिटकाती हुई, वहाँ बैठी हुई है! कहीं यह भ्रम का तो खेल नहीं? उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। 'राजन्! तुम मुझे नहीं पहचानते?' उस सुन्दरी ने मधुर स्वर में सवाल किया। राजा अवाक खड़ा रह गया।

'मेरा नाम यशोदेवी है। मैंने ही तुम्हें धर्म-पथ से फिसलने से बचा रखा था। मेरे ही कारण तुम्हारा यश सारे संसार में फैला हुआ है।' वह सुन्दरी बोली। राजा को बहुत खुशी हुई।

'देवी! मैं इस कृपा के लिए हमेशा कृतज्ञ रहूँगा। मुझे अब यही चिन्ता है कि मेरे बाद मेरा लड़का भी धर्म-पथ पर चलेगा कि नहीं?' राजा बोला।

तब उस देवी ने कहा—'राजन्! तुम चिन्ता न करो! जिस तरह मैं तुमको धर्म का रास्ता दिखाती आई थी उसी तरह तुम्हारे लड़के को भी दिखाती रहूँगी।'

सुन्दरलाल मलहोत्रा

इतना कह कर वह देवी अन्तर्धान हो गई। कुछ दिन बाद सुगुणसिंह चल बसा और युवराज शीलसिंह गद्दी पर बैठा। बूढ़े मन्त्री धर्मपाल ने कोई गड़बड़ी न होने दी और युवराज की सब तरह से सहायता की।

एक दिन पूनों की रात के बारह बजे शीलसिंह के सामने भी यशोदेवी प्रत्यक्ष हुई। उन्हें देख कर पहले शीलसिंह को भी बहुत आश्चर्य हुआ। यशोदेवी ने नए राजा को आशीर्वाद दिया और एक मुँदरी देकर कहा—'बेटा! लो, यह मुँदरी! जब-जब कोई अनुचित कार्य करने लगोगे, तब-तब तुम्हारी नजर इस मुँदरी पर पड़ेगी और तुम्हें मेरी याद आ जाएगी। तुम तुरंत चेत जाओगे और अपनी भूल सुधार लोगे!' इस तरह सदुपदेश देकर देवी अदृश्य हो गई।

विस्मित होकर शीलसिंह ने मुँदरी पहन ली और हमेशा देवी का उपदेश याद रखने का निश्चय किया।

उस मुँदरी के प्रभाव से और बूढ़े मन्त्री धर्मपाल की सलाह से शीलसिंह बहुत दिनों तक न्याय के पथ पर चलता रहा। राज में शाँति विराज रही थी। फिर भी युवक शीलसिंह के मन में कभी-कभी अन्य राज्य जीतने और साम्राज्य स्थापित करने की इच्छा जाग उठती थी।

ऐसे ही समय सेनापति दण्डपाल से शीलसिंह की बड़ी दोस्ती हो गई। बेचारा धर्मपाल बूढ़ा था। दण्डपाल युवक था। इसलिए शीलसिंह पर अपना प्रभाव डालने में उसे कोई कठिनाई न हुई।

धीरे-धीरे शीलसिंह दण्डपाल के इशारों पर नाचने लगा। हर बात में अब वह उसी का मुँह ताकता था। दण्डपाल को भी युद्ध करने और दूसरे राज्यों पर चढ़ाई करने की बहुत लालसा थी। उसने शीलसिंह को खूब उकसाया। अक्सर वह कहने लगता

था—'जो राजा दूसरे राजाओं पर चढ़ाई न करे, अपने शत्रुओं का नाश न करे, वह राजा ही क्या! राजा का तो धर्म ही है युद्ध करना!'

इस तरह की बातें सुनते-सुनते शीलसिंह का मन बदल गया। अब वह किसी काम में धर्मपाल की राय न लेता था। आखिर उसने आस-पड़ोस के राजाओं पर चढ़ाई करना ही अपना धर्म बना लिया। बूढ़े मन्त्री धर्मपाल ने युवक राजा की टेढ़ी भौंहों की परवाह न करके बार-बार उसे समझाने की चेष्टा की। लेकिन कोई नतीजा न निकला। यशोदेवी की दी हुई मुँदरी की तो अब याद भी न रह गई थी।

इस तरह हमेशा युद्ध में लगे रहने के कारण शीलसिंह का स्वभाव भी बदल गया। क्रूरता उसके हृदय में घर कर गई। निरंतर रक्त-पात देखते-देखते उसकी छाती पत्थर की हो गई। सहन-शीलता तो उसमें बिलकुल न रही।

अब वह बात-बात पर चिढ़ने और बिगड़ने लगा। लोग उसे देख कर भय से काँपने लगे। वह अपनी प्रजा को भी बहुत सताने लगा।

हमेशा युद्ध करते रहने के कारण राज्य का खज़ाना खाली हो गया था। इसलिए शीलसिंह ने रियाया के ऊपर नए-नए कर लगाए। करों के बोझ से लोग दबे जाने लगे। लेकिन किसी को इस जुल्म के खिलाफ अपनी आवाज़ उठाने की हिम्मत न होती थी।

यों अत्याचार सहते-सहते इस राजा पर से प्रजा का विश्वास उठ गया। यहाँ तक कि उसकी फौज भी उसके खिलाफ खड़ी हो गई।

आखिर ऐसी हालत हो गई कि शीलसिंह को अपने जीवन से भी वैराग्य हो गया।

उसने सोचा—'सब लोग मुझसे घृणा करने लगे हैं। ऐसी हालत में मैं जीकर क्या करूँगा? मैंने अनेक राजाओं को हराया। हरे-भरे घर उजाड़ दिए और अनेकों की आशाएँ मिट्टी में मिला दीं। नतीजा क्या हुआ? खज़ाना खाली हो गया और मुझे नए-नए कर लगाने पड़े। अब मेरी प्रजा भी मुझसे घृणा करने लगी है!' यों वह पछतावे की आग में जलने लगा। वह बार-बार यशोदेवी की दी हुई मुँदरी पर नज़र डालने और सिर धुनने लगा।

इसी बीच मन्त्री धर्मपाल की मौत हो गई। अब शीलसिंह के कपटी मित्र दण्डपाल आदि खुल कर खेलने लगे। राज्य का सारा अधिकार दण्डपाल ने हथिया लिया। उसके अत्याचारों की हद हो गई थी। यहाँ तक कि राजमहल में भी उसी की बात चलती थी। राजा शीलसिंह को पूछने वाला कोई भी न रह गया था। एक दिन राज-महल में बड़ी हलचल पैदा हो गई। दासियाँ फुसफुसाने लगीं कि राजा की चचेरी बहन 'पावनी' को दण्डपाल पकड़ ले गया है। इस खबर के कानों में पड़ते ही शीलसिंह का खून खौलने लगा। उसका नशा टूट गया। उसने बूढ़े राजा की याद दिला कर सेना को जमा किया और दण्डपाल से युद्ध करके पावनी को छुड़ाया। दूसरे राजाओं से उसने संधि कर ली। सभी नए लगाए कर उठा दिए। दण्डपाल और उसके अनुयाइयों के न रहने से राज्य में फिर शाँति विराजी।

अब शीलसिंह मुँदरी को देख कर यशोदेवी की याद करने और अन्याय से बचने लगा। कुछ ही दिनों में उसका फिर पहले का सा नाम हो गया। लोगों ने समझ लिया कि दण्डपाल आदि दुर्जनों की सङ्गत करने से ही शीलसिंह का चरित्र बिगड़ गया था। नहीं तो क्या उसकी नसों में सुगुणसिंह का खून नहीं बह रहा था?

साग-सब्जियों का मुर्गा
*
ज़रा बताओ तो देखें, यह
मुर्गा किन-किन साग-सब्जियों
का बना है ?
प्रेषिका : कुसुमलता पांडे

मुख-चित्र

जब भगवान कृष्ण ने नरकासुर को मार डाला तो उस दैत्यके बहुत से मित्रों ने भगवान से बदला लेने की ठान ली। उनमें से द्विविद नाम का एक वानर-राज था जो सुग्रीव का मन्त्री रहा था। नरकासुर के मरते ही इस ने निश्चय कर लिया था कि 'कभी-न-कभी इसकी कसर निकाल लूँगा।' यों निश्चय कर लेने के बाद उसने राक्षसों की एक बड़ी सेना जमा कर ली और उनकी मदद से देश में तरह-तरह के उत्पात मचाने लगा। उसके साथी गाँवों और शहरों पर टूट पड़ते थे और घरों में आग लगा देते थे। वे ऋषि-मुनियों के आश्रमों में घुस कर यज्ञ-वेदियों को अपवित्र कर देते, होमानल बुझा देते और मुनि-पत्नियों को उठा ले जाते।

एक दिन ऐसा हुआ कि द्विविद को रैवत-पर्वत पर जाना पड़ा। जाते-जाते उसे मधुर सङ्गीत सुनाई देने लगा। नज़दीक जाने पर उसने देखा कि मौजी बलराम जी कुछ युवतियों के बीच बैठ कर गा रहे हैं। उस ने सोचा—'किसी न किसी तरह रङ्ग में भङ्ग कर देना चाहिए।' वह एक पेड़ पर चढ़ गया और दाँत किटकिटाने लगा। इससे बलराम के चारों ओर बैठी हुई युवतियों का ध्यान बँट गया। द्विविद अब खीस निपोड़ कर बलराम को भी चिढ़ाने लगा।

बलराम ने नाराज़ होकर एक पत्थर फेंका और उसे भगाने की चेष्टा की। तब द्विविद ने बलराम का मधु-कलश फोड़ डाला और उन युवतियों के बीच में कूद कर उन्हें डरा दिया। अब बलराम को गुस्सा आ गया और उन्होंने अपना हल उठाया। उधर द्विविद ने एक विशाल वृक्ष उखाड़ लिया और बलराम पर फेंका। उन्हों ने अपने को बचाया और हल से उस वानर का सिर फोड़ डाला। तब वह उन पर टूट पड़ा और उनकी सबल छाती पर मुक्के मारने लगा। बलराम ने उसका गला घोंट कर मार डाला और देश को उसके उपद्रव से बचाया।

देवीनगर में एक प्रसिद्ध मन्दिर था। वह मन्दिर बहुत पुराना था। उसके ज्यादातर हिस्से टूट-फूट गए थे। मन्दिर तो खण्डहर सा हो गया था, लेकिन उसमें जो मूर्तियाँ थीं, उनकी सुन्दरता अब भी वैसी ही बनी हुई थी। उन मूर्तियों की बड़ी प्रशंसा सुन कर रामसिंह नाम का एक व्यक्ति उस मन्दिर को देखने गया। वहाँ जाकर उसने देखा कि मन्दिर के शिखर, स्तम्भ, मण्डप आदि शिल्पी की अनुपम चतुरता का प्रमाण दे रहे हैं। जगह-जगह रखी मूर्तियों को देख कर मालूम होता था, जैसे वे बोलना ही चाहती हैं।

उन सबमें से एक मूर्ति ने उसे बहुत ज्यादा आकर्षित किया। वह देवी सरस्वती की मूर्ति थी और मन्दिर के एक कोने में पड़ी हुई थी। बदन से सजीवता बरस रही थी। उस मूर्ति की सुन्दरता का तो बखान हो ही नहीं सकता था। रामसिंह ने सोचा—'न जाने, वह कौन सा मूर्तिकार था, जिसने स्वर्ग की इस सुषमा को धरती पर साकार उतार दिया ! धन्य है वह!' इतने में उसे एक सन्देह हो आया। उसने सोचा—'इस दिव्य मूर्ति को तो मन्दिर के अन्दर वेदी पर रखना चाहिए था। यह इस कोने में क्यों उपेक्षित पड़ी है!'

इस उधेड़-बुन में पड़ा रामसिंह बड़ी देर तक खड़ा रह गया। इतने में उसे किसी के आने की आहट सुनाई दी। उसने तुरन्त पीछे मुड़ कर देखा। मन्दिर की देहली पर एक बूढ़ा, जो अधमरा सा लगता था और फटे-चिटे गन्दे पहने हुए था, जिसकी आँखें धँसी हुई सी और बाल उलझे और रूखे-सूखे थे, पागल की तरह खड़ा-खड़ा एक-टक उसी मूर्ति की ओर देख रहा था। रामसिंह ने सोचा—'शायद मैंने इसी की आहट सुनी थी।' वह उस बूढ़े के नज़दीक गया।

भवेश त्रिपाठी

'क्या आप जानते हैं कि यह मूर्ति इस तरह बाहर क्यों पड़ी हुई है? इसे अन्दर क्यों नहीं रखा गया?' उसने सवाल किया। बूढ़ा कुछ नहीं बोला। रामसिंह ने उस मन्दिर के बारे में और भी कई बातें पूछीं। अन्त में बूढ़े ने एक लम्बी सांस लेकर कहना शुरू किया—'बेटा! इस देश में एक बहुत ही धर्मात्मा राजा था। वह प्रजा को अपनी सन्तान ही समझता था।

उस राजा को कला-कौशल से बहुत प्रेम था। वह कवियों, चित्रकारों, मूर्तिकारों और गायकों का बहुत सम्मान करता था। एक बार इस राजा के मन में हुआ कि एक ऐसा मन्दिर बनवाया जाए, जिससे उसका नाम संसार में अमर हो जाए। उसने मन्त्री से अपने मन की बात कही। मन्त्री ने तुरन्त सारे राज में इस विषय की घोषणा करा दी, जिसे सुन कर दूर-दूर के मूर्तिकार और शिल्पी उस राजा के यहां आने लगे। शिल्पियों ने नम्रता-पूर्वक अपनी-अपनी विशेषताएँ राजा से कह सुनाईं। उनमें से परमवीर नामक शिल्पी ने राजा से यों कहा—'राजन्! इस मन्दिर के निर्माण का भार आप मुझे सौंप दीजिए! मैं ऐसी-ऐसी मूर्तियाँ गढ़ूँगा कि युग-युग तक आपका नाम प्रातःस्मरणीय रह जाएगा!'

यह सुन कर राजा खुशी से फूल उठा। उसने मन्त्री को हुक्म दिया कि 'मन्दिर-निर्माण के लिए यह शिल्पी, जितना धन चाहे, जो-जो वस्तुएँ चाहे, तुरंत जुटा दो!' दूसरे ही दिन से काम शुरू हो गया। हज़ारों कारीगर काम करने लगे। अपार धन और अथक परिश्रम से तीन साल बाद वह अपूर्व मन्दिर तैयार हुआ। परमवीर की सब बातों पर निगरानी थी। उसने मन्दिर में स्थापित करने के लिए जो मूर्तियाँ बनाईं थीं, वे बहुत सुन्दर थीं। खास कर देवी सरस्वती की एक मूर्ति, जो भगवान की मूर्ति

की बगल में स्थापित करने के लिए बनाई गई थी, अपूर्व थी।' इतना कह कर बूढ़ा थोड़ी देर चुप रहा, जैसे वह अपनी पुरानी यादगारियों में खो गया हो। 'फिर क्या हुआ?' रामसिंह का प्रश्न सुन कर, वह चेता और कहने लगा—'आखिर जब सब कुछ हो गया, तब राजा मन्दिर को देखने आए। उन सुन्दर मूर्तियों को देख कर उन्हें बहुत आनन्द हुआ। इतने में उनकी नज़र देवी सरस्वती पर पड़ी जो मन्दिर के एक कोने में रखी हुई थीं।'

'यह क्या! ऐसी सुन्दर मूर्ति को यहाँ किसने रखा? इसे मन्दिर के गर्भ में भगवान के साथ क्यों नहीं प्रतिष्ठित किया गया?' राजा ने पूछा। राजा के पास ही मन्त्री खड़ा था। उसे परमवीर से कुछ चिढ़-सी हो गई थी। राजा उसका इतना सम्मान करता था कि देख कर मन्त्री मन-ही-मन जलने लग गया था। इसीलिए वह नहीं चाहता था कि इस सुन्दर मूर्ति को मन्दिर के गर्भ-गृह में स्थान मिले। उसने कहा—'हुज़ूर! यह परमवीर की गढ़ी हुई मूर्ति है और यह उसे अपनी सब मूर्तियों से प्यारी है।' 'ठीक तो है, यह है भी तो बहुत सुन्दर! इसे भगवान की मूर्ति की दाईं ओर बिठा दो!' महाराज ने कहा। 'लेकिन महाराज! मेरी एक छोटी सी विनती है। राज्य की प्रजा यह चाहती है कि महाराज की एक मूर्ति बनाई जाए और भगवान की दाईं ओर वही बिठाई जाए। कहा भी है कि राजा भगवान का अंश है। इससे महाराज की स्मृति चिर-स्थाई होगी।' चतुर मन्त्री ने बड़ी चालाकी से यह सुझाव पेश किया। दरबारियों ने भी समर्थन में सिर हिला दिए। राजा का मन डोल गया। मन्त्री की बात उसे जँच गई। उसने परमवीर को अपनी एक मूर्ति गढ़ने की आज्ञा दी। लेकिन परमवीर ने इनकार कर

दिया। उसने विनीत-स्वर में कहा—'हुजूर! यह मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं मनुष्य की मूर्ति नहीं गढ़ता। मैं महाराज के लिए सब कुछ दे सकता हूँ। लेकिन अपनी यह टेक नहीं तोड़ सकता।' राजा ने उसे बहुत से लालच दिए। दरबारियों ने भी उसे बहुत समझाया-बुझाया। लेकिन परमवीर टस-से-मस न हुआ। आखिर महाराज को क्रोध आ गया। उन्होंने कहा—'अच्छा! तुमने हठ करके अपने पैरों पर आप ही कुल्हाड़ी मार ली। जाओ! सरस्वती की इस मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा न होगी। यह मन्दिर के कोने में इसी तरह पड़ी रहेगी। साथ ही सुन लो! तुम इस राज में फिर कभी दीख पड़े तो अपनी जान से भी हाथ धो बैठोगे! जाओ!'

परमवीर तत्क्षण वहाँ से चला गया। मन्दिर में भगवान की प्रतिष्ठा हुई। लेकिन देवी सरस्वती की यह मूर्ति इसी तरह पड़ी रही। उधर परमवीर इस अपमान की चिन्ता से घुल-घुल कर कुछ ही दिनों में चल बसा। वर्ष पर वर्ष बीत गए। राजा भी मर गया और देश पर दुश्मनों ने अधिकार कर लिया। यही इस मन्दिर का इतिहास है।' बूढ़ा इतना कह कर चुप हो रहा।

'तो मन्त्री को परमवीर की टेक पहले मालूम नहीं थी?' रामसिंह ने पूछा।

'मालूम क्यों नहीं थी! उसने जान-बूझ कर ईर्ष्या-वश परमवीर को चौपट कर दिया था।' बूढ़े ने कहा। 'फिर उस दुष्ट मन्त्री का क्या हुआ?' रामसिंह ने पूछा।

'देखना चाहते हो उसे?' बूढ़े ने कहा।

'क्या वह दुष्ट अब भी जिन्दा है?' रामसिंह ने पूछा। 'हाँ, अपनी कलङ्क-कहानी सुनाने के लिए ज़िन्दा रहा। लेकिन अब ज़िन्दा नहीं रहेगा। यही है वह पापी मन्त्री!' इतना कह कर बूढ़े ने कमर से कटार निकाल ली और रामसिंह के कुछ कहने के पहले ही अपनी छाती में भोंक ली।

एक बार एक पण्डित और एक किसान के बीच बहस उठ खड़ी हुई कि दुनियाँ में बड़ा कौन है ? 'जब देखो, हल जोतना, बोना, निराना, काटना ! यही न ? अरे, भैया ! ज़मीन निराने से क्या होता है ? पहले अपने मन को निराओ, मन को ! देखो, सामने वह पेड़ खड़ा है; बताओ, उस में और तुममें क्या अन्तर है ?' पण्डित ने किसान से पूछा ।

किसान ने जवाब दिया—'पूज्य पण्डित जी ! शायद आप भूलते हैं कि मैं समाज के लिए आप से ज्यादा काम का आदमी हूँ । आपके ज्ञान के बिना भी दुनियाँ खुशी से चलती रहेगी । लेकिन मेरे उपजाए अन्न के बिना एक दिन भी किसी का काम न चलेगा !'

यह सुन कर पण्डित जी बड़े सोच में पड़ गए ।

किसान फिर कहने लगा—'क्या सोच रहे हैं पण्डित जी ? लीजिए, एक छोटी सी कहानी सुनिए ! किसी समय एक पत्थर और कीचड़ के बीच झगड़ा होने लगा । पत्थर कहता था—'देखो ! मैं कितना शक्तिशाली हूँ ! कितना साफ-सुथरा और सुन्दर हूँ ! तुम ? कैसे लथ-पथ हो ? छूते ही हाथ गन्दे हो जाते हैं । तुम्हें देखते ही आदमी घृणा से दूर हट जाता है । कभी किसी के पैर में लग भी गए तो धोए बिना उनको चैन नहीं पड़ता !' पत्थर ने कीचड़ की हँसी उड़ाई ।

पत्थर की घमण्ड भरी बातें सुन कर कीचड़ को भी गुस्सा आ गया । वह बोला—'अरे कठोर पत्थर ! मैं देखने में गन्दा भले ही लगूँ; लेकिन मनुष्य को जीवन देने वाला अन्न कहाँ से उपजता है, जानता है ? मेरी ही छाती से !' कीचड़

विजयकुमार

ने सगर्व जवाब दिया।' किसान ने अपनी कहानी खतम की।

उसकी कहानी सुनने के बाद पण्डित जी बोले—'ऐ भले-मानुस! कीचड़ की बात तो सच है। वह काटी नहीं जा सकती। लेकिन ज़रा उस ओर तो देखो! ये बड़े-बड़े मन्दिर-महल कैसे बनते हैं? पत्थर की मदद से ही न? इसलिए दुनियाँ में हर चीज़ की ज़रूरत होती है।' इस पर किसान बोला—'अब आप तो मेरी ही तरफ बोलने लगे हैं। इतना मान तो लिया कि दुनियाँ में हर चीज़ की ज़रूरत होती है! अच्छा तो सुन लीजिए और एक छोटी सी कहानी! पीछे अपनी राय दीजिएगा।' यह कह कर किसान ने कहानी शुरू कर दी।

'एक जङ्गल में एक बरगद का पेड़ था और एक सागवान का। एक बार बरगद ने सागवान को नीचा दिखाने के लिए कहा—'सुनो! मैं हज़ारों प्राणियों को आश्रय देता हूँ। तुम्हारे पत्ते तो बहुत बड़े-बड़े हैं। लेकिन तुमसे दुनिया की कोई भलाई नहीं होती!'

तब सागवान बोला—'रे अभिमानी बरगद! छोटे मुँह बड़ी बात कर रहा है! ज़रा अपनी योग्यता तो विचार ले! बता, तेरी छाँह किस काम की? मेरी लकड़ी की मदद से आदमी घर बनाते हैं, जो सैकड़ों बरस तक धूप और बारिश से उन्हें बचाए रखते हैं।' यों सागवान ने मुँह-तोड़ जवाब दिया।' ज्यों ही किसान ने अपनी कहानी खतम की, पण्डित जी ने उसका हाथ पकड़ लिया और बोले—'भैया! तुम्हारा कहना सोलहों आने सच है। तुम छाँह देने वाले बरगद हो और मैं घर बनाने वाला सागवान हूँ। तुम उपजाऊ कीचड़ हो और मैं मन्दिर-महल बनाने वाला पत्थर हूँ। ऊँच-नीच कुछ भी नहीं। दुनिया को हम दोनों की ज़रूरत है।' बस, दोनों का विवाद मिट गया।

रंगीन चित्र-कथा, छठा चित्र

उसी समय जिन्दगी से हारे हुए बादशाह को कहीं से, कानों में अमृत-रस घोलने वाला मीठा गाना सुनाई देने लगा। यह नकली बुल्बुल का सा कृत्रिम स्वर नहीं था। यह तो असली बुलबुल को देवताओं की देन थी। बुल्बुल गाती हुई झरोखे में आ बैठी। उसे देख कर बादशाह ने कहा—'प्यारी बुल्बुल! मैंने तुम्हें अपने राज से निकाल कर बड़ा भारी गुनाह किया। फिर भी तुमने मन में कोई मलाल न रखा और बिना बुलाए आकर गाने लगीं! तुम्हारा गाना सुनते ही मौत भी दूर भाग गई। मैं तुम्हारा एहसान कैसे चुकाऊँ?' इतना कहते-कहते बादशाह का गला भर आया और उसकी आँखों से आँसू बह चले। बुल्बुल बोली—'भोले बादशाह! मेरा एहसान तो तुमने चुका दिया। मेरा गाना सुनते ही तुमने आँसू बहाए। यही मेरे लिए काफी है।' बुल्बुल का गाना सुनते-सुनते बादशाह को नींद आ गई। सबेरे जब वह उठा तो बिल्कुल चङ्गा हो गया था।

बादशाह ने चारों ओर नज़र फेरी। वहाँ नौकर-चाकर कोई नहीं थे। वे सभी नए बादशाह की खिदमत में लगे हुए थे। लेकिन बुल्बुल वहीं झरोखे में बैठी हुई थी। बादशाह ने कहा—'प्यारी बुलबुल! अब तुम मुझे छोड़ कर कहीं न जाना! तुम जो माँगोगी दूँगा।'

बुल्बुल बोली—'एक वादा करो तो जब चाहो, आकर गाना सुनाऊँ!' बादशाह उठ कर अपनी पोशाक पहनते हुए बोला—'अच्छा बोल! क्या चाहती है?' 'किसी को मालूम न हो कि मैं तुम्हारे पास आती-जाती हूँ। बस, मैं और कुछ नहीं चाहती।' इतना कह कर वह बुल्बुल उड़ गई।

कुछ देर बाद जब दरबारी लोग आए तो अपने पुराने बादशाह को चङ्गा देख कर दङ्ग रह गए। लेकिन बादशाह ने उन्हें कुछ कहा-सुना नहीं। बादशाह फिर गद्दी पर बैठा और बहुत दिन तक अपनी हुकूमत चलाई। बुल्बुल का गाना सुनते हुए उसकी जिन्दगी आराम से कट गई। [समाप्त]

चन्दामामा पहेली

बायें से दायें :

2. कठिन
4. बुढ़ापा
5. शिवजी
7. सोना
10. आग
12. एक महीना
13. आँख
14. तुरन्त
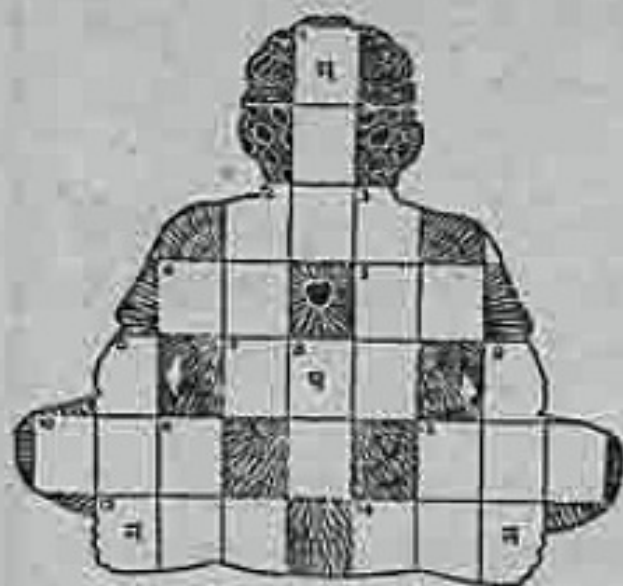
ऊपर से नीचे :

1. मगज़
2. छिपाव
3. सहन का पूर्वार्ध
6. मुख
8. राह
9. पवित्र
11. लीन
12. निचोड़

फोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता

फरवरी - प्रतियोगिता - फल

*

फरवरी के फोटो के लिए निम्नलिखित परिचयोक्तियाँ चुनी गई हैं। इनकी प्रेषिका को १०) का पुरस्कार मिलेगा।

परिचयोक्तियाँ :

पहला फोटो : तन्मय
दूसरा फोटो : चिन्मय

प्रेषिका : तारामणि पारीक रतनगढ़

ये पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ प्रेषिका के नाम-सहित फरवरी के चन्दामामा में प्रकाशित होंगी। फरवरी के अङ्क के प्रकाशित होते ही पुरस्कार की रकम भेज दी जाएगी।

मार्च की प्रतियोगिता के लिए बगल का पृष्ठ देखिए।

एक अनिवार्य सूचना :

परिचयोक्तियाँ सिर्फ़ कार्ड पर ही भेजी जानी चाहिए। कागज़ पर लिख कर, लिफाफे के अन्दर रख कर भेजी जाने वाली परिचयोक्तियों पर कोई ध्यान न दिया जाएगा।

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता

मार्च १९५३ :: पारितोषक १०)

ऊपर के फोटो मार्च के अङ्क में छापे जाएँगे। इनके लिए उपयुक्त परिचयोक्तियाँ चाहिए।

१. परिचयोक्ति फोटो के उपयुक्त हो।
२. उसमें एक या तीन-चार शब्द से ज्यादा न हों।
३. सबसे प्रधान विषय यह है कि पहले और दूसरे फोटो की परिचयोक्तियों में परस्पर सम्बन्ध हो।
४. एक व्यक्ति परिचयोक्तियों की एक ही जोड़ी भेज सकता है।
५. परिचयोक्तियाँ, पूरे नाम और पते के साथ कार्ड पर लिख कर भेजनी चाहिए।
६. परिचयोक्तियाँ १० जनवरी के अन्दर हमें पहुँच जानी चाहिए। उसके बाद आने वाली परिचयोक्तियों की गिनती नहीं होगी।
७. प्राप्त परिचयोक्तियों की सर्वोत्तम जोड़ी के लिए १०) का पुरस्कार दिया जाएगा।

परिचयोक्तियाँ भेजने का पता :

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता

चन्दामामा प्रकाशन

पोस्ट बडपलनी : मद्रास-२६

बड़े सबेरे कागा बोला !

[महेश 'साहित्यरत्न']

घर-घर में कहता फिरता है,
'जागो-जागो जल्दी भाई !
बीत चुका निशि का अँधियारा,
लिए उजाला ऊषा आई !

पूरब में लाली जागी है,
जागा है सूरज का गोला।'
बड़े सबेरे कागा बोला।

कोमल पंखों से निर्मित है
देखो ! इसका चोला काला।
छोटी आँखें, टेढ़ी गर्दन,
'काँव-काँव' का गीत निराला।

छत पर, छज्जे पर, आँगन में,
बड़-जामुन-पीपल पर डोला।
बड़े सबेरे कागा बोला।

रोटी के टुकड़ों की खातिर,
बहुत दूर से उड़ कर आता।
दिन भर इसी टोह में फिरता,
साँझ ढले घर वापस जाता।

उसने मेरे आँगन का भी,
कोना-कोना खूब टटोला।
बड़े सबेरे कागा बोला।

दीदी मुझसे कहती रहती
'मत इसको बिस्कुट दिखलाओ !
झपट हाथ से ले भागेगा,
तुम इस पर मत प्यार जताओ।

बड़ा चतुर होता है कागा,
भले देखने में हो भोला।'
बड़े सबेरे कागा बोला।

चन्दामामा पहेली का जवाब :

'बताओ तो ?' का जवाब :

१. बिहार, २. देहली, ३. अमृतसर, ४. कोंकण

'पूरा करो' का जवाब :

१. कंचन २. सिंचन ३. पंचन ४. वाचन ५. मोचन
६. पाचन ७. याचन ८. सोचन ९. लोचन १०. कुंचन

पिछले महीने के चन्दामामा के ५१-वें पृष्ठ में जो चित्र छपे थे उनमें गलतियाँ :

१. छिपकली के पीछे के पैर आगे और आगे के पैर पीछे होने चाहिए।
२. आदमी के गर्दन होनी चाहिए।
३. सुई में तागा छेद के पार निकला होना चाहिए।
४. घर की दीवार एक ओर ही दीखनी चाहिए।
५. बोतल के मुँह से काग छोटा होना चाहिए।
६. कुर्सी की चार टाँगें होनी चाहिए।
७. बकरे की झूल गर्दन के नीचे होनी चाहिए।
८. तम्बू खूँटियों से जकड़ा होना चाहिए।
९. हवा के रुख में ही बारिश होनी चाहिए।

Printed by B. NAGI REDDI at the B. N. K. Press Ltd., Madras 26, and Published by him from Chandamama Publications, Madras 26, Controlling Editor : SRI CHAKRAPANI

Photo by Pranlal K. Patel

पुरस्कृत
परिचयोक्ति

खेल - खिलौने

प्रेषिका :
माधुरी श्रीवास्तवा, जौनपुर

रङ्गीन चित्र - कथा, चित्र – ६